Chap-4

चतुर्थ अध्याय

संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की राजनैतिक चित्रण

राजनीति एवं उसका स्वरूप

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण

तुलनात्मक अध्ययन

सन्दर्भानुक्रम

अध्याय-४

संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण :-

राजनीति एवं उसका स्वरूप :---

राजनीति शब्द अंग्रेजी के 'पोलिटिक्स' (Politics) का हिन्दी रूपान्तरण है। पोलिटिक्स (Politics) शब्द का संबंध यूनानी शब्द "पोलिस"[१] (Polics) से है। जिसका अर्थ होता है नगर। प्राचीन यूनानी इसे नगरों की बातों से संबंधित ज्ञान मानते थे। लेकिन तत्कालीन समाज में नगर और राज्य में कोई अन्तर न था, दोनों को एक ही समझा जाता था। तत्कालीन यूनानी समाज नगर या राज्य में रहा करता था। जिसका क्षेत्रफल नगर तथा उसके आस-पास के इलाके तक सीमित था। बाद में यूनानी भाषा में पोलिस (Polics) शब्द का प्रयोग दुर्ग, राज्य, नगर आदि अर्थों में किया जाने लगा।

पाश्चात्य लेखक अरस्तू ने सर्वप्रथम "राजनीति" (Politics) शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक "नगर राज्य" के शीर्षक में किया था। इस राजनीति शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द पोलिस (Polics) और पोलिटिक्स (Politics) से हुई मानी जाती है। पोलिटिक्स शब्द का प्रयोग अरस्तू के करने के पश्चात् जैलीनेक, सिजविक तथा डाल्टन डार्फ आदि लेखकों के द्वारा भी स्वीकार किया जाने लगा। सभी विद्वान लेखकों का मानना है कि राज्य और सरकार से संबंधित समस्त विषय सामग्री का समावेश राजनीति के अन्तर्गत हो जाता है।

'राजनीति' शब्द दो शब्दों के योग से बना है -"राज + नीति" अर्थात् राजा और उसके द्वारा बनाये गये नीति-नियम। इसी

को विस्तृत फलक पर देखें तो एक का अर्थ है राज्य व देश और दूसरे का अर्थ है उस राज्य के नीति-नियम, कानून, व्यवस्था। कहने का आशय यह है कि संपूर्ण राज्य को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिये, शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए नीति,नियम व कानून की आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना किसी भी राज्य में न तो व्यवस्था कायम हो सकती है और न ही उस राज्य में सुरक्षा की कामना की जा सकती है। इसलिए ये दोनों शब्द अलग-अलग होते हुए भी अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। कहा गया है कि -'अनुशासन ही देश को महान बनाता है।' यह अनुशासन क्या है ? देश की कानूनी व्यवस्था या उसकी नीतियाँ ही अनुशासन हैं। इसलिए ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक भी हैं।

राजनीति के स्वरूप के संदर्भ में डॉ. बसु का मानना है कि - राजनीति२ शब्द का संबंध राजा तथा राज्य से माना जाता है। जब संसार में राजतंत्र का प्रभुत्व था तब राजा द्वारा राज्य की रक्षा और शासन संचालन के लिए अपनायी गयी नीति ही राजनीति कहलाती थी। आज वर्तमान युग में प्रजातंत्र के प्रभुत्व के कारण राजा का पद व राज्य समाप्त हो चुका है। अतः राज्य एवं प्रशासन नीति को ही राजनीति माना जाने लगा है।

राजनीति के संदर्भ में अप्पोदय का यह मानना है कि "यह वह विज्ञान है जिसका संबंध राज्य और इसके अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों से है।"[३] अप्पोदय के अनुसार राज्य या देश में जब कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो अथवा देश के अस्तित्त्व व विकास में कोई बाधा उत्पन्न हो तभी कोई नीति या नियम बनाये व लगाये जायं। किन्तु इस नियम को पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि हर देश व राज्य में तमाम स्वतंत्रताओं के बावजूद कुछ नीति- नियम तो अवश्य निर्धारित होते हैं, जहाँ पर

कोई नीति-नियम नहीं होता वहाँ पर भी अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के मनोमस्तिष्क में एक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित होता है जिसके चलते सरकार द्वारा बिना किसी नीति का निर्धारण किये शान्ति कायम रहती है। किन्तु श्री अप्पोदय जिस आवश्यक परिस्थिति की ओर संकेत दे रहे हैं उसे हम आपातकालीन (Emergency) स्थिति कह सकते हैं और आपातकालीन (Emergency) स्थिति में कुछ विशिष्ट प्रकार के नियम होते हैं जिसका उपयोग उस निश्चित समय में ही किया जाता है। इस प्रकार राजनीति का सीधा संबंध देश व राज्य की सुरक्षा व्यवस्था से है।

राज्य की सुरक्षा को याज्ञवल्क्य स्मृति में राजनीति का मूल मंत्र माना गया है। उसमें स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि "राजनीति का मूल मंत्र राज्य की सुरक्षा है। किसी प्रकार राज्य का अपकार न हो ऐसा चिंतन करते रहना चाहिए। यह अवधारण मंत्र याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है। साम, दाम, भेद और दण्ड ये उपाय हैं। साम मधुर और प्रिय भाषण करके कार्य सिद्ध करने को कहते हैं। धन देकर कार्य बना लेना दाम कहा जाता है। सामंत आदि में परस्पर बैर उत्पन्न कर कार्य सिद्धि करा लेना भेद कहा जाता है। धन का अपहरणादि तथा बध पर्यन्त अपकार करना दण्ड कहा गया है। ये उपाय देश-काल के अनुसार कुशल रीति से प्रयुक्त होने पर कार्य में सफलता प्राप्त होती है। दण्ड का तभी उपाय करना चाहिए जब अन्य उपाय असफल हो जाय।"४

राजनीति पूर्णतः वास्तविकता पर आधारित होती है। राजनीति का पूर्णतः पालन करना भी चाहिए। मनु ने भी इस बात पर बल देते हुए कहा है कि - "राजनीति परिपक्वता और वास्तविकता पर आधारित होनी चाहिए। मनु राजा से (राज्य शक्ति) यह अपेक्षा रखते हैं कि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में उसी तरह मग्न रहेगा जिस तरह से बगुला ध्यानमग्न रहता है। राजा को

सिंह की तरह आवश्यकता पड़ने पर अपनी शक्ति प्रकट करनी चाहिए , भेडिये की तरह साहस रखना चाहिए । इस प्रकार के शक्ति-प्रयोग आदि से राज्य में सुरक्षा-व्यवस्था कायम रहती है और राज्य संपन्न होता है ।''५

मनुस्मृति संस्कृत साहित्य का राजनैतिक ग्रन्थ है जिसमें राजनीति संबंधी तमाम विवरण दिये गये हैं । इसी तरह से याज्ञवल्क्य स्मृति में भी राजनीति,राजा तथा उनकी मंत्री परिषद के तमाम नीति-नियमों का उल्लेख किया गया है । उसमें भी प्रजा की सुरक्षा को सबसे बड़ा धर्म माना गया है । जिस राजा के द्वारा प्रजा की सुरक्षा नहीं हो पाती वह राजा आधे पाप का भागी होता है । ऐसा उल्लेख देखने को मिलता है ।

मनु ने जहाँ राजा के प्रमुख कर्त्तव्य का निर्धारण किया है वहीं मंत्रीपरिषद की भी व्यवस्था की है । इसी संदर्भ में डॉ. सोमनाथ शुक्ल लिखते हैं -''मनु ने राजा का प्रमुख कार्य प्रजा की सुरक्षा कहा है । इसके लिए राज्य की रक्षा कर विरोधी तत्वों को नष्ट करना है । जो राजा अपने राज्य और संबंधियों को भूल, भ्रम से उत्पीड़ित करता है वह अपने जीवन और राज्य से हाथ धो बैठता है । राज्य की रक्षा के लिए राजा से सक्षम प्रशासन तंत्र की संरचना की अपेक्षा मनु ने की है ।''६

इस प्रकार संस्कृत के राजनीतिक ग्रंथों जैसे मनुस्मृति , याज्ञवल्क्यस्मृति, गौतम स्मृति, वृहस्पति स्मृति, परासर स्मृति, बौधायन स्मृति, अत्रिस्मृति आदि ग्रंथों में तत्कालीन न्याय व्यवस्था का उल्लेख किया गया है । वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था उन्हीं प्राचीन न्याय व्यवस्थाओं पर आधारित है ।

राजनीति को आज विभिन्न नामों से पुकारा जाने लगा है । कुछ लोग इसे पोलिटिकल साइंस (Political Scince) अर्थात् राजनीति विज्ञान कहते हैं , तो कुछ लोग थ्यौरिटिकल पोलिटिक्स

(Theoretical Politics) अर्थात् सैद्धान्तिक राजनीति कहते हैं और कुछ लोग प्रेक्टिकल / अप्लाइड पोलिटिक्स (Practical or Applied Politics) अर्थात् व्यवहारिक राजनीति।

राजनीति शब्द के आधुनिक प्रयोग के संबंध में नवीन नारायण अग्रवाल जी लिखते हैं कि "आज हम जिस अर्थ में राजनीति (Politics) शब्द का प्रयोग करते हैं वह राजनीतिक-विज्ञान से कहीं अधिक व्यापक है। गिलक्राइस्ट के अनुसार 'राजनीति' शब्द से प्रायः हमारा अभिप्राय शासन के उन सामयिक प्रश्नों से होता है जो राजनीति कम और आर्थिक अधिक होती है। इस प्रकार मजदूरों की समस्या , आयात-निर्यात की समस्या, कार्यांग (Executive) और विधानांग (Legistlature) के आपसी संबंधों की समस्या आदि वे प्रश्न, जो हमारे विधायकों के सम्मुख प्रस्तुत होते रहते हैं और राजनीति के विषय हैं। इस अर्थ में राजनीति कला अधिक है और विज्ञान कम ; और हमें उस व्यक्ति को राजनीतिज्ञ कहना चाहिए जो राजनीति में सक्रिय भाग लेता हो।"७

मानव-जीवन पर दृष्टिपात करने से हमें दो चीजें स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। प्रथम व्यक्ति का अपने ढंग से सोचना तथा द्वितीय किसी भी कार्य का करना। लेकिन समाज में रहने के कारण व्यक्ति मनमानी नहीं कर सकता अर्थात् उसे जो-कुछ भी करना होगा उसे वह समाज के मुताबिक ही करेगा। क्योंकि व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता है कारण कि व्यक्ति समाज में रहता है इसलिए एक व्यक्ति की इच्छाएँ दूसरे व्यक्ति से टकराती हैं। परिणाम स्वरूप समाज के व्यक्ति को चाहिए कि वह व्यक्ति एवं सदस्यों के आपसी संबंधों को शासन द्वारा नियमित या नियंत्रित

करे । इसी संबंध में ए. अप्पोदय राय का मानना है कि "जन समुदाय शासन के उद्देश्य से इकाई में संगठित होता है तो उसे राजनीतिक दृष्टि से संगठित कहा जाता है और 'राजनीति' में राजनीतिक समाज में विचार करने पर कानून के क्षेत्र में इसका निश्चित अर्थ होता है - कानून के लिए संगठित जनसमुदाय । इस प्रकार राजनीति के मुख्य दो भाग हुए-- राजनीतिक सिद्धान्त तथा राजनैतिक संगठन ।"[८]

इसी संबंध में ए. अप्पोदय राय जी आगे लिखते हैं कि "यह वह विज्ञान है , जिसका संबंध राज्य और इसके अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों से है ।"[९]

पाश्चात्य विद्वान सर अर्नेष्ट बाबर का मानना है कि यह सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जो किसी भी राजनीतिक संगठन को पूरा करने का एक प्रबल साधन है । इसी संबंध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए अप्पोदय जी लिखते हैं - "राजनीतिक सिद्धान्त इन प्रश्नों को उठाता है कि राजनीतिक प्रश्नों के क्या उद्देश्य हैं और उनको पूरा करने के सर्वोत्तम साधन क्या है ? "[१०]

राजनीति की आवश्यकता क्यों पड़ी , कैसे हुई ? इसका प्रयोजन क्या है ? राजा तथा राज्य के सामाजिक जीवन, लोगों के साथ कैसे जुड़ गए ? दोनों के जुड़ने के पीछे क्या कारण था ? इत्यादि प्रश्न विचारणीय अवश्य हैं । उपर्युक्त विविध प्रश्नों की समस्या का निराकरण एवं राजा तथा राज्य की समस्या को केन्द्र में रखते हुए मनु ने मनुस्मृति में लिखा है कि -"बिना राज्य के इस लोक में भय से चारों ओर अराजकता की लूटपाट होती थी इसलिए ईश्वर ने सबकी रक्षा के लिए राजा के पद का सृजन किया ।"[११] राजा देवों की शक्ति से युक्त होता था इसलिए वह अपनी शक्ति और बल का पूर्ण उपयोग करके समस्त प्राणियों की रक्षा करता था ।[१२]

महाकवि कालिदास की दृष्टि में भी राजा राज्य का सर्वप्रधान अंग है जिसके बिना राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कालिदास की भी दृष्टि में राजा उसे ही कहा जा सकता है जो प्रजा को प्रसन्न रखता है।[१३] राजा के कर्त्तव्य के बारे में गौतम ऋषि का यह कथन दृष्टव्य है - सभी प्राणियों की रक्षा, न्यायोचित दंड-विधान, वर्णाश्रम पालन एवं पथभ्रष्ट लोगों को सन्मार्ग पर आरूढ़ करना ही राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।[१४] वशिष्ठ का मानना है कि राजा के लिए रक्षण कार्य जीवन-पर्यंत चलने वाला एक सत्र है, जिसमें उसे भय और मृदुता का परित्याग कर देना चाहिए।[१५]

चूँकि राजा प्रजा पालक के रूप में माना गया है इसलिए राजा को साधारण मनुष्य या बालक समझ कर उसे अपमानित नहीं करना चाहिए।[१६] जब तक जनता के बीच राजपद का प्रभाव रहता है व जनता या प्रजा की रक्षा के लिए राजा द्वारा जिस नीति का पालन-पोषण होता है उसे ही राजनीति कहा जाता है। लेकिन आज राजनीति की परिभाषा बदल गयी है। इसका कारण यह है कि आधुनिक युग में राजा का पद समाप्त हो गया है तथा राज्य की सुरक्षा का जो कार्य-भार राजा पर था आज उस सुरक्षा का कार्यभार सरकार पर आ गया है।

समग्रतया यदि देखा जाय तो राजनीति का संबंध राज्य और उसके तन्त्र से है। राज्य के सात अंगों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान राजा का माना जाता है। राजा के बिना राज्य का निर्वाह संभव नहीं है और दूसरी ओर राज्य के बिना राजा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है अर्थात् राज्य और राजा दोनों का संबंध एक सिक्के के दो पहलू के समान महत्वपूर्ण है। शुक्रनीति ने इसी परस्पर निकटता को ध्यान में रखते हुए राजा को राज्य का मुख माना है।[१७] राजा की सुरक्षा, शासन-तंत्र की सुरक्षा कैसे की जाय और दोनों पर अधिकार कैसे प्राप्त किया जाय, यही राजनीति का मुख्य विषय

पहले भी था , आज भी है और आनेवाले कल में भी होगा। परन्तु आज की राजनीति पर यदि पूर्णरूपेण दृष्टिपात किया जाय तो पहले की राजनीति और आज की राजनीति में थोड़ा-बहुत अन्तर दिखायी देता है। आज राजनीति का अर्थ लूटमार, चोरी-डकैती, अत्याचार से ओत-प्रोत तो है ही साथ ही साथ सबकुछ करने का मुख्य उद्देश्य कुर्सी प्राप्त करना हो गया है और कुर्सी प्राप्त करना ही लोग राजनीति मानने लगे हैं। प्रो. शिवदत्त ज्ञानी प्राचीन राजनीति में आधुनिक राजनीति का पाया जाना स्वीकार करते हुए कहते हैं कि -"जो राजनीतिक सिद्धान्त आधुनिक समझे जाते थे वे सब प्राचीन भारत में ज्ञात थे।"[१८] इस प्रकार राजनीति का प्रभाव कोई आज का नहीं है बल्कि इसका प्रभाव प्राचीनकाल से ही समाज पर देखा जा सकता है। वेदों में भी राजा [१९], सभा [२०], समिति [२१], राजकृत [२२], राजा का चुनाव [२३], राजा का पद्‌चुत होना एवं फिर से सिंहासनारूढ़ किया जाना [२४] इत्यादि वर्णन प्राप्त है।

प्राचीनकाल में भारतीय राजनीति विचारकों ने राज्य को "सप्तांग" नाम से संबोधित किया है। महाभारत में यह सात अंग इस प्रकार बताए गये हैं--

आत्माऽमात्यश्च कोषाश्च दण्डोमित्राणि चैव हि।

तथा ----

जनपदाश्चेव पुरं च कुरूनन्दन।

एतत्सप्तात्मकं राज्य परिपाल्यं कुरूनन्दन॥ [२५]

अमरकोष में इन सप्तांगों की चर्चा इस प्रकार प्राप्त होती है यथा--

"स्वाम्यात्यसुहृतकोषराष्ट्र दुर्गवलानि च।"[२६]

(राजा, आमात्य, मित्र, क्रोध, राष्ट्र, दुर्ग एवं सेना) शुक्रनीति में भी सात अंगों की चर्चा की गयी है यथा- स्वामी, अमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र दुर्ग एवं दण्ड।[२७] इनमें राजा को सिर, मंत्री को चक्षु, मित्र को वर्ण, कोष को मुख , सैन्य को बुद्धि , दुर्ग को भुजाएँ तथा

राष्ट्र को पद माना गया है । [२८]

राज्य को सुरक्षित एवं सुव्यवस्थित रखना प्रत्येक राजा का दायित्व होता है । इस सुरक्षा-व्यवस्था के लिए राजा जिन-जिन व्यवस्थाओं का निर्माण करता है वे सभी राजनीति के स्वरूप के अन्तर्गत आते हैं । जैसे-- राजा का चयन , उसका कर्त्तव्य, मंत्रिपरिषद का चयन, उसका कर्त्तव्य, न्याय-व्यवस्था, कोष , सेना, युद्ध प्रणाली, गुप्तचर व्यवस्था, ग्राम, पुर, राजनीति, रणनीति, शासन-व्यवस्था, दूत व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था आदि ।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राजनीति एक ऐसा शास्त्र या विज्ञान है जो राज्य या देश के अस्तित्व व विकास के लिए निर्धारित किया जाता है , जिसके केन्द्र में राज्य की सुरक्षा का उद्देश्य होता है । इसलिए राज्य व देश की पूर्ण सुरक्षा हेतु बनाये गये नीति-नियमों को राजनीति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक - चित्रण :---

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों के संदर्भ में यद्यपि इन नाटकों में स्वरूप, शिल्पादि को विचार अन्यत्र किया गया है । यहाँ पर उन ऐतिहासिक नाटकों का राजनैतिक पक्ष प्रस्तुत करने जा रहे हैं । जिन्हें मैने अपने शोध का विषय बनाया है तथा अपने शोध में उन नाटकों को सम्मिलित किया है । संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में ऐसे नाटक बहुत कम उपलब्ध है जिनकी रचना का मुख्य केन्द्र राजनैतिक वातावरण रहा हो , ऐसे ही कुछ नाटकों में वीर रस की प्रधानता है इसके साथ ही साथ ऐतिहासिकता का भी निर्वाह पूर्ण रूपेण संभव हो सका है । राजनैतिक प्रधान ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक जोड़-तोड़, अन्तर्द्वन्द्व , कूटनीतिक

राजनीतिक एवं युद्ध नीतिक चालें आदि की प्रधानता होने के कारण कुछ नाटक समाज में अत्यधिक प्रचलित हो गयें है । इन नाटकों में मुद्राराक्षस, मृच्छकटिकं जैसे नाटकों की चर्चा की जा सकती है ।

यहाँ पर संस्कृत के उन ऐतिहासिक नाटकों का समावेश किया गया है जिनमें ऐतिहासिकता के साथ-साथ राजनैतिक पक्ष भी उभर कर सामने आये हैं । अध्ययन की सुविधा हेतु इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । यथा ---

१- राजा एवं उसके कर्त्तव्य

२- मंत्रिपरिषद तथा उसके कार्य

३- न्याय-व्यवस्था

४- युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीति

५- सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था

६- दण्ड-विधान

(१) राजा एवं उसके कर्त्तव्य : ---

राजा का राज्य के प्रति जो कर्तव्य होना चाहिए , वह कर्तव्य संस्कृत के समस्त ऐतिहासिक नाटकों में दृष्टिगोचर नहीं होता है । मृच्छकटिककालीन राजनैतिक दशा अत्यन्त विचित्र थी । देश में सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी । राजा की शक्तियाँ अनियन्त्रित थी । राजा के कर्मचारी छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ जाते थे तथा अपनी इच्छानुसार कार्य छोड़कर चले जाना ही अपना कर्तव्य समझते थे । राजा के अत्याचारों से बचने के लिए प्रजा सदैव राजा के विरूद्ध षडयंत्र में संलग्न रहा करती थी ।

मृच्छकटिकम् नाटक में राजा को प्रजा के ऊपर किन्ही कारणों से यदि संदेह हो जाता था तो चाहे कारण सत्य हो या असत्य, लेकिन उसे जेल में डाल दिया जाता था । प्रस्तुत नाटक

में राजापालक ने आर्थक को सिद्धादेश का आधार बनाकर जेल में डाल दिया था। १ राजा नगर के बीच मन्द पराक्रम करने वाले शत्रु का सर्वस्व उसी (अपहृत कर लेता था जिस प्रकार आकाश में मेघ मन्द तेज वाले चन्द्रमा की किरणों को आच्छादित कर लेता है। २ समाज में राजा में प्रवोत्सव राज्य परिवर्तन जैसे अवसरों पर राजा द्वारा अपराधियों इत्यादि को मुक्त करने की भी प्रथा प्रचलित थी। ३ राज्य विभाग द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के माध्यम से राजा राज्य की सुरक्षा करवाता था। तत्कालीन राजा अत्यन्त कमजोर तथा जनता के प्रति अपने कर्तव्यों का पूर्ण पालन न करनेवाले होते थे। षडयन्त्रकारी, देश के चोर बदमाश, धूर्त, तथा विद्रोही राज्य कर्मचारी एवं राजा द्वारा अपमानित व्यक्तियों को एकत्र करके उनकी सहायता से राजा के विरूद्ध षडयंत्र किया करते थे। राजा की राज शक्ति कमजोर होने के कारण वे कुछ भी नहीं बोल पाते थे। मृच्छकटिकम् कालीन राज शक्ति की चर्चा करते हुए बलदेव उपाध्याय जी लिखते हैं कि- ''राजशक्ति बहुत क्षीण थी। राजा बेहद कमजोर था। जनरक्षण का इतना कुप्रबन्ध या प्रबन्धाभाव था कि शाम होते ही बड़े घरों की बहू -बेटियाँ घर से बाहर सड़क पर आने में भय रखती थी कि कहीं उनकी इज्जत का ग्राहक कोई बदमाश कहीं टूट न पड़े। नगर की रक्षा करने वाले रक्षी पुरूष वहाँ अवश्य विद्यमान थे, परन्तु शत्रु-मित्र की परख करने में बड़ी ढिलाई की जाती थी। राजा के इस कुप्रबन्ध के कारण ही घण्टों में सिंहासन उलट जाता था और दूसरा राजा आ धमकता था। नाटक में प्रदर्शित राज्य परिवर्तन का रहस्य इसी दुर्बल राजशक्ति के भीतर छुपा हुआ है।''४ तत्कालीन राजा प्रजारंजक नहीं था बल्कि राजा के अत्याचारों से बचने के लिए प्रजा राजा के विरूद्ध षडयंत्र करती थी और राजा उससे आशंकित रहते हुए अपने विपक्षियों को किंचित मात्र प्रतिकूल देखते ही उन्हें बंदी बना लेता था। राजा की

चाटुकारिता करने वाले कर्मचारी अपने आप को राजा से कम नहीं मानते थे जैसा आज भी देखा जाता है कि सत्ता या कुर्सी पर स्थित व्यक्ति अपने पद का उतना गर्व शायद नहीं करता है , जितना गर्व उसके पीछे घूमनेवाले लोग करते हैं। राजा के संबंधी भी अपने पद का पूर्ण दुरूपयोग करते थे। दूसरे लोग उनसे घृणा करते थे। सांयकाल में राजमार्ग पर निकलना सुरक्षित और सम्मान जनक नहीं था। तत्कालीन समाज में कर वसूल करने की प्रथा भी प्रचलित थी। लोगों से कर वसूल किया जाता था। सप्तम अंक के प्रारम्भ में ही विदूषक चारूदत्त से कहता है कि --

''वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधपन्तो मधुकर-पुरूषा : प्रविचरन्ति।'' ५

शासन पर राजा की पकड़ बहुत अच्छी नहीं होती थी। कार्य कराने वाले अर्थात अधिकारी वर्ग तथा काम करने वाले अर्थात कर्मचारी वर्ग दोनों आजीविका के लिए नौकरी करते थे। किसी के अन्दर कर्तव्य-पालन की भावना नही थी। राजा से अपमानित होन पर वे लोग उसका विद्रोह करने वालों के सहायक बनते थे। ६ इसीलिए ''आर्यक'' बन्धन तुड़ाकर जेल से भागने में सफल हुआ। कर्मचारियों के असन्तोष का परिणाम राजसत्ता का परिवर्तन तक हो जाता था। इसीलिए यज्ञशाला में वर्तमान तत्कालीन राजपालक को मारने में आर्यक के समस्त समर्थक सफल हो जाते है। ऐसा परिवर्तन होना आम बात होती थी। इसीलिए मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्ति का तत्काल वध करने में चाण्डाल हिचकिचाते थे। ७ शायद यही कारण कि चारूदत्त को शीघ्र नहीं मारा जाता है।

''ज्ञातेन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्
राजापमान कुपितांश्च नरेन्द्र भृत्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगंधरायण इवोदयनस्य राज्ञ : ॥''

"मालविकाग्निमित्रम नाटक" में जिस समय राजा का मंत्री विदर्भ देश के राजा का पत्र पढ़कर यह बताता है कि यदि महाराज माधवसेन को छुड़ाना चाहते हैं तो मेरी शर्त सुन लें- "यदि हमारे साले मौर्यसचिव को, जो कि आपका बन्दी है, छोड देते हो तो मैं माधवसेन को अविलम्ब बन्धन से मुक्त कर दूँगा।" ८ राजा इसे बदले की भावना से भेजा गया सन्देश समझकर क्रोध में आकर विदर्भ देश पर आक्रमण करने के लिए सैनिकों को आज्ञा देते हैं ९ कभी-कभी राजा दूसरों से सलाह भी लेता था जिस समय राजा विदर्भ देश पर आक्रमण करने के लिए सैनिकों को आदेश देता है उसी समय वह अमात्य कहता है कि आप क्या सोचते है। तब अमात्य कहता है कि "जो प्रजा के बीच अपने प्रति अनुराग नहीं पैदाकर पाया है ऐसे शत्रु को नष्ट कर देना चाहिए।"१०

भास ने अपने नाटकों में राजा के लिए महाराज, तथा राजा जैसे संबोधनों से व्यक्त किया है। जिन शब्दों का प्रयोग राजा ने अपने नाटकों में किया है उससे ज्ञात होता है कि राजा अनुवंदीक परम्परा से जुड़े होते थे। अमात्य शब्द का प्रयोग संभवतः विशेष अधिकारवालों के लिए प्रयोग किये जाते थे। राजा को अपने अधीन यदि कोई मंत्री कर लेता था तो इसमें मंत्रियों की सफलता समझी जाती थी। यौगन्धरायण के कार्य कलाप से यह बात स्पष्ट हो जाती है। ११ मंत्री भले ही स्वेच्छानुसार कार्य करता था लेकिन उसे भी राजा से भयभीत होने की आशंका रहती थी। १२ तत्युगीन राजा प्रजा में प्रिय, धर्मोपद्ष्टा एवं न्यायप्रिय होता था। १३

तत्कालीन राजा अपनी विद्या एवं शक्ति का गर्व करता था। राजा लोगों से यह उम्मीद रखता था कि वह उसे सम्मान दे और उसकी अधीनता स्वीकार करे तभी राजा उदयन विषकम्भक के पूँछने पर कहता है कि -

''मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणु नरेन्द्रा
मुकुटतट विलग्नं भृत्यभूता वहन्ति ।
न च मम परितोषो यन्न मां वत्सराज :
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्त : ।।''१४

राजा स्त्रियों की सुरक्षा का भार स्वयं वहन करता था इसी सन्दर्भ में नाटक का नायक बादरायण से कहता है -

''कुलं तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाड्क्षे हि मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान् ।
ततो रूपे कांतिम् न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि परिपाल्या युवतय : ।। ''१५

मुद्रा राक्षस नाटक में नाटककार ने राजा का स्थान सर्वोत्तम बताया है । नाटककार ने नाटक में राजा के लिए राजा स्वामी १६ देव १७ क्षितिपति १८ भूमिपति १९ भूपति २० भूमिपाल २१ पृथ्वीपति २२ नराधिपति २३ नरेन्द्र २४ नृपति २५ नृप २६ तथा पार्थवि २७ आदि नामों का संबोधन किया है । राजा की योग्यता राजा की समृद्धि तथा व्यक्तित्व पर निर्भर होती थी । तत्कालीन युगमें ''प्रथितकुलज'' व्यक्ति ही राजा होता था । २८ उस समय शिक्षित राजा का ही समाज में आदर था । मूर्ख से तो लक्ष्मी भी सदैव घृणा करती थी । २९ सुन्दर तथा बालिष्ठ व्यक्तित्व वाले ३० राजा की ही लोग प्रशंसा करते थे । राज्य का केन्द्रीय व्यक्ति राजा स्वतन्त्र नहीं था बरन उसे हर प्रकार के उत्तरदायित्व वहन करने पड़ते थे । ३१ कुशल शासन के साथ-साथ प्रजा को प्रसन्न रखना राजाका कर्तव्य था । राजा प्रकृतिरंजक होता था । उस प्रकृतिरंजक का अर्थ था राजा द्वारा शासन के कर्तव्यों का पालन करना । शासन तन्त्र का कार्य कठिन होते हुए भी राजा को दूसरे के हित के लिए स्वयं के स्वार्थ का भी बलिदान देना पड़ता था । ३२ राजपद पाने वाले व्यक्ति को कभी भी आराम नहीं मिलता

था जैसा कि आज भी देखा जाता है कि जिसके पास सत्ता होती है उसे अपने पद के अनुरूप विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता है इसी बात का संकेत नाटककार राजा चन्द्रगुप्त के माध्यम से व्यक्त करते हैं - ''राजा तो कभी स्वतन्त्र नहीं, राजधर्म का पालन उसे परनत्र बनाये रखता है । यह राज्य भी कैसी दुःखद वस्तु है ।'' ३३ शुक्रनीति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजद्रोहियों को दण्ड देना राजा का प्रमुख कार्य है । शुक्रनीति की इसी परम्परा का अनुकरण नाटककार विशाखदत्त ने भी मुद्राराक्षस नाटक में पूर्णरूपेण किया है । नाटक का पात्र चाणक्य चन्दनदास से कहता है कि- ''देख लो, सेठ चन्दनदास, राजद्रोहियों के प्रति राजा कितना कठोर है । अभी भी मौका है, राक्षस परिवार को सौंप दो ।'' ३४ हिन्दी नाटककार प्रसाद ने भी चन्द्रगुप्त आदि नाटकों में इसी परम्परा का अनुकरण किया है उन्होंने तो अपने नाटकों में राजद्रोह के लिए मृत्यु दण्ड तक की सजा देने का संकेत दिया है लेकिन ब्राह्मण बध्य नहीं था उसे अंध कूप में डालने का संकेत प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने यह संकेत दिया है कि राजा को अपने कर्तव्य पालन में कोई असुविधा न हो इसके उन्हें विशेष प्रकार की सुविधाएं (राजप्रसाद, शयनागृह के बाहर शयनाधिकारी तथा सेवक आदि) प्रदान की जाती थी । जिस समय राजा प्रासाद के बाहर जाने लगते थे उस समय उनके अनुयायियों की भीड़ चला करती थी । ३५ सम्राट से मिलने पर अथवा विदा लेते समय राजा उन्हें साष्टांग प्रणाम करते थे तथा इस क्रिया में उनके मुकुट में लगे मणियों के किरण जाल से सम्राट की अंगुलियों के रन्ध्रभांग सुशोर्भित होते थे । ३६ कही-कही नाटकों में ऐसा भी वर्णन प्राप्त होता है कि अंतिम निर्णय आदि करने का अधिकार केवल राजा का होता था । ३७ निर्णय लेने हेतु न्यायाधिकारियों की नियुक्ति अवश्य होती थी लेकिन वह न्यायाधिकारी केवल परामर्श ही देता

था ।

(२) मंत्रि परिषद तथा उसके कार्य : ---

विशाखदत्त कालीन नाटक में मंत्री एवं मंत्रि परिषद के मंत्रियों के नाम अलग-अलग नहीं होते थें, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर मंत्री की नियुक्ति कर ली जाती थी । नाटक का अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि नाटककार ने मंत्रियों की नियुक्ति के लिए कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र का सहारा लिया होगा । चाणक्य ने भी मंत्रियों की संख्या के बार में किसी निश्चित संख्या का संकेत नहीं दिया था उनका मानना था कि मंत्रि परिषद के लिए जितने मंत्री की आवश्यकता हो उतने मंत्री की नियुक्ति कर लेनी चाहिए । प्रस्तुत नाटक में विदेश मंत्री १ के रूप में भृगुरायण का उल्लेख प्राप्त होता है । सभी मंत्रियों के मुखिया के रूप में मुख्यमंत्री २ या प्रधानामात्य ३ भी होता था जिसकी आज्ञा का पालन सभी मंत्रिगण करते थे । जैसा कि आज भी देखने को मिलता है चाहे वह संस्था किसी प्रकार की भी हो ।

भास कालीन नाटकों के अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि राज्य व्यवस्री महाभारत कालीन थी । भास ने अपने नाटकों में ''प्रधानमंत्री'' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता था । यह पदाधिकारी सम्पूर्ण शासन व्यवस्थामें समदर्शी होता था । स्वप्नवासवदत्तम् का रूमण्वान इसी पद का अधिकारी था । ४ राजा को अपने अधीन कर लेना ही मंत्रियों की पूर्ण रूपेण सफलता मानी जाती थी । यौग-धराधण के कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है । ५ यौगन्धतयण ने राज्य की उद्देश्यपूर्ति हेतु वासवदत्ता को न्यास रूप में रखता है । मंत्री भले ही स्वेच्छानुसार कार्य करते रहे हों लेकिन उन्हें भी राजा से डर बनी रहती थी । ६ प्राचीनभारत की शासन पद्धति नामक पुस्तक में

डॉ.अल्तेकर ने राज्यव्यवस्था के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया है । नाटकों में भी अमात्य एवं मंत्री शब्द प्रयोग किया गया है । प्रतिज्ञायौगंधरायण नाटक में मंत्री शब्द संभवत सामान्य माना जाता था लेकिन अमात्य शब्द धारण करने वाले कर्मचारी की विशेष अधिकार प्राप्त होता था । ७ मंत्री या प्रधानमंत्री युद्ध आदि में सक्रिय भाग लेते थे तथा राजा के निजी जीवन से संबंधित कार्यों में भी हस्तक्षेप करता था । राजा का मंत्री अपने भाग्य को राजा के भाग्य के साथ जुड़ा हुआ मानता है । तभी तो जिस समय राजा को पता चलता है कि वासवदत्ता को यौगन्धरायण ने ही छिपा रखा था फिर भी राजा उसे माफ कर देते हैं इस पर मंत्री यौगन्धरायण कहता है कि- ''महाराज के भाग्यों के साथ ही हमारा भी भाग्य जुड़ा हुआ है ।'' ८ मंत्री यौग-धरायण राज्य की रक्षा के लिए हर संभव प्रयत्न करता था । वासवदत्ता को हटाने का कारण जब राजा यौगन्धरायण से पूँछता है तो वह कहता है कि- '' केवल कौशम्बी की रक्षा कर सकूँ । (राज्य के अन्य प्रदेश शत्रु के हाथों चले गये थे) इसलिए ।''९

प्रतिज्ञा यौग-धरायण में मंत्री यौगन्धरायण राजा की सुरक्षा एवं उसकी विजय हेतु अपने आप को भी समर्पित कर देता है राजा की विजय में अपनी विजय और राजा के सुख-दुःख में अपना सुख दुःख मानते हुए यौगन्धरायण कहता है कि-

''रिपु गतमपनीय वत्सराजं ग्रहणमुपेत्य रेण स्वशस्त्रदोषात् ।
अपमहमपनीतभर्तृदुःखोः जितामिति राजकुले सुखं विशामि ।।'' १०

प्रस्तुत नाटक में मंत्री यौगन्धरायण स्वयं को राज भक्त मानता है और कहता है कि मैंने राजाभक्ति के कारण ही विपत्ति में फँसा मुझको प्रद्योत के राज कर्मचारी धीरतापूर्वक देखें । जो लोग मन से ''अमात्य''शब्द को चाहते हैं (अमात्य बनना चाहते हैं) उनकी अभिलाषाएँ (मुझे देखकर) या तो और प्रबल हो जाँयें या फिर नष्ट

हो जायें । मालविकाग्नि मित्रम् नाटक के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है क राजा अपने कार्यमें पूर्ण सक्षम तथा सतर्क भी होता था । राज्य के कार्य में मंत्रियों से भी परामर्श करते थे । १२ राज्य कार्य के संचालन के लिए अमात्य परिषद भी हुआ करती थी । १३ जिसके लिए मंत्रिपरिषद शब्द का प्रयोग होता था । नाटक में सचिव, अमात्य, मंत्री, आदि शब्द समानायकि रूप में प्रयुक्त है । नाटक में राजा एवं मंत्री प्रत्येक कार्य को नीति के अनुसार करते थे ।

(३)- न्याय व्यवस्था :---

किसी भी राज्य या संस्था को चलाने के लिए न्याय-व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है । इसके बिना कोई भी कार्य समुचित नहीं चल सकता । नाटकों में न्याय-व्यवस्था को संचालित करने के लिए न्यायालय नियुक्त होता था । जहाँ पर पक्ष या विपक्ष के लोगों का न्याय सुनाया जाता था । मृच्छकटिकं नाटक में मुकदमों का फैसला न्यायालय में किया जाता था । न्यायिक वेतन पाने वाला होता था तथा राजा का स्थायी नौकर होता था । राजा कानून बनाने के साथ-साथ न्यायाधीसों की नियुक्ति तथा सेवामुक्ति का कार्य भी करता था । नाटक में न्याय की बात करना न्यायाधीसों के लिए कठिन था । न्याय करना न्यायाधीस के लिए स्वाधीन नहीं था । बल्कि पराधीन था । न्यायाधीश पर प्रायः आरोप या दोष लगाया जाता था । उसके गुणों की परीक्षा नहीं होती थी । मृच्छकटिकम् नाटक में न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत जुए में हारे हुए , धन को न अदा करने वाले व्यक्ति को , स्त्री हत्या करने वाले को , किसी राजनैतिक अपराधी की सहायता करने वाले आदि को दण्ड देने का विधान था । ये दण्ड

शारीरिक यंत्रणा से लेकर मृत्युदण्ड तक दिये जाते थे । १

प्रस्तुत नाटक के अध्ययन से यह पता चलता है कि न्यायाधीस का निर्णय ही अंतिम नहीं होता था । न्यायाधिकारी के परामर्श का अतिक्रमण करके ही दण्ड दिया जाता था । राजा ने चारुदत्त को अपनी तरफ से मृत्युदण्ड दिया था । मृत्युदण्ड प्राप्त अधिकारी के नाम व कुल गोत्र का उच्चारण करके उसके अपराध की घोषणा की जाती थी ।

प्रस्तुत नाटक न्याय-व्यवस्था मनु की न्याय-व्यवस्था से मिलती-जुलती थी । दण्डाधिकारी को न्याय देने में अधिक समय नहीं लगाया जाता था । छोटे से छोटे अपराध से लेकर हत्या जैसे अपराध तक निर्णय ही एक दिन में हो जाता था । गवाही के लिए कोई औपचारिकता नहीं होती थी । न्यायालय में आवश्यकतानुसार किसी को भी बुलाया जा सकता था । प्रतिष्ठित व्यक्ति को अपराध के रूप में बुलाये जाने पर भी उन्हें सम्मानित किया जाता था तथा सम्मानपूर्वक आसन पर बिठाया जाता था । न्यायाधीश निष्पक्ष न्याय करना चाहते थे किन्तु अपनी विवशताओं के कारण वे ऐसा नहीं कर पाते थे । कभी-कभी वादी या प्रतिवादी की धूर्तता के कारण अथवा राजा या उसके संबंधी के हस्तक्षेप के कारण न्यायाधीश के द्वारा गलत निर्णय भी हो जाता था । ३

मुद्राराक्षस कालीन नाटक की न्याय-व्यवस्था अत्यंत कठोर थी । नाटक का पात्र काल पाशिक अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था करता था । इस व्यवस्था के अंतर्गत लोगों को उनके कार्य के अनुसार न्यायिक दंड देता था । मृच्छकटिकम् की भांति दण्ड सामान्य से लेकर मृत्युपर्यंत दिया जाता था । छोटे-छोटे अपराधों पर मारने-पीटने का भी विधान था । दंड के रूप में अपराधियों को प्राण दंड के अलावा हाथियों को कुचलवाने की भी प्रथा थी । ४ तत्कालीन समाज में राज्य में राजा के बाद सचिव

का स्थान होता था । राज्य का संपूर्ण कार्यभार उसी के हाथ में रहता था । किन्तु राजा कभी-कभी अमात्य के निर्णय का तिरस्कार करके उसे भी मरवा सकता था ।

मालविकाग्निमित्रम नाटक में ऐसा पता चलता है कि तत्कालीन न्याय-व्यवस्था में न्यायिक एक व्यक्ति नहीं होता था और न ही किसी व्यक्ति का परीक्षणादि संभावना के कारण एकाकी होता था । एकाकी व्यक्ति सर्वज्ञ होते हुए भी न्यायिक के रूप में उसका निर्णय दोषयुक्त माना जाता था । ५ नाट्यशास्त्र जैसी प्रयोगविद्या का निर्णय प्रायोगिक रूप से होता था वाग्व्यवहार से नहीं । ६

(४)- युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीति :--

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों के संपूर्ण अध्ययन करने से पता चलता है कि तत्युगीन समाज में युद्धादि का प्रचलन पूर्णरूपेण हो चुका था । किसी भी राजा पर आक्रमण करने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद इत्यादि नीतियों को अपनाना सामान्य बात समझी जाती थी । राजा या उसके मंत्री, गुप्तचर आदि युद्ध में विजयश्री प्राप्त करने के लिए कूटनीतिक चालें चलकर या रणनीति तैयार करके शत्रु पर आक्रमण करते थे । भास कालीन नाटकों में भी साम, दाम, दंड के अलावा भेद नीति का भी उपयोग पूर्णरूपेण किया जाता था । भेद नीति के माध्यम से ही राजा शत्रु सेना में फूट डालकर अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर लेता था । भास रचित स्वप्नवासवदत्तम नाटक के पांचवे अंक में कांचुकी इसी बात की ओर संकेत करते हुए कहता है कि ''आप के शत्रुओं में भेद कर दिया गया है । आपके गुणों पर अनुरक्त नागरिकों को भी आश्वस्त कर दिया गया है । आपके युद्ध यात्रा के समय पृष्ठ रक्षिणी सेना की भी व्यवस्था कर दी गई है । शत्रुनाश के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन्हें जुटा लिया गया है । सेना गंगा को भी

पार कर चुकी है । अब वत्सराज आपके हाथ में ही है । ''१ इन्हीं द्वारा रचित प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम् का तीसरा अंक भी इसी बात की पुष्टि करता है । कूटनीतिक युद्ध में 'नयच्छल' प्रमुख रूप से होता था ।२ नीति का बदला नीति अथवा छल से दिया जाता था । हारे हुए शत्रु को दंड देने का विधान था । प्रतिज्ञा यौगंधरायणं नाटक में यौगन्धरायण कहता है कि ''मैंने जिन घरों में आग लगाया वे घर मंत्रियों के हृदय शांत नहीं हो रहे हैं । दंड विधान करने वाले महासेन से मेरी यह पूजा हो रही है । अपराधी का सत्कार तो बध ही होता है ।''३

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के भरत वाक्य से भारत के विशाल भव्यरूप की झांकी मिलती है । भास ने सागर पर्यंत हिमालय का तथा विंध से सुशोभित भारतभूमि के एक छत्र शासन का संकेत प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से व्यक्त करना चाहा है । यथा----

''इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्रांकां राजसिंहः प्रशास्तु नः ।।''४

तत्युगीन राजाओं की यही आदर्शभावना थी , यही कारण था कि युद्धादि में राजनीति की समस्त नीति-नियमों का पालन नाटककारों ने अपने नाटकों में अपने-अपने ढंग से किया है ।

मुद्राराक्षस नाटक में युद्ध सामग्री की भी चर्चा की गई है । शुक्रनीति में अस्त्र जैसे साधनों का प्रयोग बताया गया है । सुक्रनीति के अनुसार अस्त्र वह आयुध है जिसे मंत्र, तंत्र व अग्नि के द्वारा फेंक कर उपयोग किया जाता था । जब कि शस्त्र, तलवार आदि पास से मारने के हथियार हैं ।५ नाटककार ने भी नाटक में सरासन ६ बाण ७ शूल ८ शक्ति ९ इत्यादि आक्रामक आयुधों के नाम दिये हैं । इसके अतिरिक्त कृपाणी, यंत्रतोरण ,कारमुक, असिपुत्रिका जैसे आयुधों की भी चर्चा नाटक में प्राप्त होती है ।

युद्ध के समय बचाव के आयुधों में धर्म १० का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है । कवच धारण करना लगभग सभी सैनिकों के लिए अनिवार्य माना जाता था । युद्ध के समय प्रयोग में आने वाले वाद्ययंत्रों में तूर्य ११, शंख १२, पटह १३, नांदीनाद १४ आदि की चर्चा नाटक में की गई है । युद्ध की विभिन्न परिस्थितियों का जायजा लेने के उपरांत जिस स्थिति में लाभ की अत्याधिक उम्मीद होती थी सेनानायक उसी स्थिति का चयन करता था ।

इसी नाटक के पंचम अंक में राक्षस व्यूहरचना के अनुसार चलने का आदेश देता है । ''सेना के अग्र भाग में स्थित मेरे पीछे खस और मगध गण के सैनिक प्रयाण करें , मध्य भाग में विराजमान गांधार सैनिक अपने-अपने यवन सेनानियों के साथ शत्रु से मोर्चा लेने के लिए तैयार रहे , चेदियों और हूणों से सुरक्षित शक राजगण सेना का पिछला भाग संभालें और जितने भी कुलूताधिप सरीखे अवशिष्ट राजवृंद हैं वे कुमाराधिराज को चारों ओर से घेर कर वचाते हुए बढ़ चलें । ''१५ युद्ध के समय देशकाल और आत्मबल१६ पर पूर्ण रूप से विचार किया जाता था । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसा संकेत प्राप्त होता है कि शासक को यथासंभव युद्ध टालने का प्रयास करना चाहिए । दुर्वल राजाओं को साम, दाम उपायों द्वारा ही वश में करना चाहिए ।१७

शुक्रनीति के अनुसार मंत्र ही राज्य का मूल्य है । आचार्यों ने मंत्र के ६ प्रकार बतलाए हैं , जो इस प्रकार हैं ---

१- संधि (शांति), २- विग्रह (युद्ध), ३- आसन (तटस्थता), ४- यान (प्रयाण) ५- संश्रय (मित्रता), ६- द्वैधीभाव (दोहरीनीति), इन सभी गुणों का प्रयोग मुद्राराक्षस नाटक में प्राप्त होता है । राजनीति या कूटनीति में सफल होने के लिए शासक को मंत्रवत होना चाहिए ।

मालविकाग्निमित्रम् नाटक में नीति के लिए तंत्र शब्द का

प्रयोग किया है ।१८ नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्युगीन समाज में पडोसी राज्यों से युद्धादि हुआ करते थे । युद्धों में लूटपाट भी होती थी । लूटपाट की समस्त वस्तुओं को राजा के लिए सेनापति उपहार स्वरूप भेजते थे । नाटक में राजा और मंत्री प्रत्येक कार्य प्रायः नीतिशास्त्र के अनुसार ही करते थे । नाटक के प्रथम अंक में विदर्भ देश पर आक्रमण के समय अमात्य शास्त्र के अनुसार ही परामर्श देता है । १९

मृच्छकटिकम् कालीन नाटक में कूटनीति, गुप्तनीति और राजनीति का वर्णन भी यत्रतत्र प्राप्त होता है । राज्य में अपराधियों का पता लगाने के लिए विशेष प्रकार के अधिकारी नियुक्त किये जाते थे । पालक ने वीरक तथा चंदन का पता लगाने के लिए आर्यक को नियुक्त किया था लेकिन नाटक में यह नीति सफल नहीं दिखाई देती है । इस नीति के कारण राज्य कर्मचारी एवं राजपुरूष विलासिता से आक्रांत थे । कर्त्तव्यपालन की विशेष भावना नहीं थी । प्रजा से अपमानित होने पर कूटनीति से विद्रोह करने वाले एक दूसरे के सहायक होते थे । २०

तत्युगीन नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युद्ध में छोटे से बड़े सभी गाग लेते थे । राजा एवं प्रधानमंत्री भी सक्रिय रूप से युद्ध में भाग लेता था । सैनिकों को वेशभूषा का भी पूर्णरूपेण ज्ञान होता था । २१ ये दस्ताने आदि पहनते थे । युद्ध में रामायण एवं महाभारत कालीन युद्धनीति को अनुवादण किया जाता था । युद्ध में हाथी से हाथी तथा घोड़े से घोड़े लड़ते थे ।२२ निरस्त्र होने पर भी समर्पण नहीं करते थे , न ही पीछे भागते थे । उस समय की ऐसी मान्यता थी कि जो स्वामी के अन्न के लिए युद्ध नहीं करते वे नरकगामी होते हैं २३ आज भी यह कहा जाता है कि व्यक्ति को नमकहराम नहीं बल्कि नमकहलाल होना चाहिए । युद्ध मंत्री का स्थान प्रधानमंत्री के बाद होता था । युद्ध में छल, बल आदि का

भी प्रयोग किया जाता था । युद्धों में औषध तथा मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता था प्रधानमंत्री युद्धादि में सक्रिय भाग लेता था तथा शास्त्रविद्या के साथ-साथ शास्त्रविद्या में भी निपुण होता था । राजा को अपने अधीन कर लेना ही मंत्रियों की सफलता भी मानी जाती थी । मंत्रियों की नीति ही सर्वेसर्वा हुआ करती थी । युद्धनीति या रणनीति इत्यादि निश्चित करना मंत्रियों के हाथ में ही होता था । मृच्छकटिकम् नाटक में 'कूटनीति' तथा 'गुप्तनीति' का भी वर्णन यत्र तत्र प्राप्त होता है । जैसे राज्य में अपनाधियों के अन्वेषण के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये जाते थे । पालक ने वीरक तथा चन्दन को आर्यक का पता लगाने के लिए नियुक्त किया था । लेकिन इस नीति के कारण ही प्रजा एवं राजा विलासी हो गये थे । कर्तव्यपालन की कोई विशेष भावना नहीं थी । राज से अपमानित होने पर कूटनीति से विद्रोह करने वाले एक-दूसरे के सहायक होते थे । २४

(५)- सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था :---

तत्युगीन नाटकों के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय की रणनीति एवं सैन्य व्यवस्था सुदृढ़ थी । नाटकों में सेना के लिए सैन्यबल इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है । महाकवि भास ने अपने नाटकों में अनुराग रहित सेना को स्त्री के समान बताया है । ''कलत्र'' शब्द सैनिकों की सुरक्षा की टुकड़ी के लिए प्रयोग किया जाता था । राज्य की सुरक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था सेना के हाथ में ही होती थी । सेना के मुख्य अधिकारी को सेनापति नाम से अभिहित किया जाता था । सेना परिश्रमी एवं अस्त्र-शस्त्र१ के संचालन में कुशल हुआ करती थी । इन सेनाओं का उपयोग प्रमुख रूप से युद्ध में ही किया जाता था । कभी-कभी इन सेनाओं का उपयोग आत्मरक्षा तथा शिकार के लिए भी किया

जाता था। इस सैन्य बल में पदातीत घुड़सवार के साथ-साथ हाथी और रथों का नियोजन भी होता था जो कि शास्त्र संमत है। महाभारत एवं रामायण काल में, युद्ध में जाते समय सेनाओं के साथ राजादि रथों या हाथियों पर सवार होकर जाते थे। प्रतिज्ञायौगन्धरायणं नाटक में यौगन्धरायण का गुप्तचर एवं भद्रवती हाथी का महावत यौगंधरायण को युद्ध के लिए उन्मत्त वेष में देखकर कहता है कि-"युद्ध छिड़ गया है, सवारों के सहित गजों को, घोड़ों के साथ योद्धाओं को, मुहूर्त भर में बल पूर्वक मार कर शत्रु की अक्षौहिणी सेना को छिन्न-भिन्न कर, गजराज के मुसल सदृश दांत के प्रहार से हाथ के टूट जाने पर, आयुध के गिर जाने पर भी पीछे नहीं किया अपितु शत्रुओं के सामने गया।"२

युद्ध में जो भी सेनाएँ जाती थीं वे धनुष-बाण, तलवार, कुंतू आदि शस्त्रों को धारण करने वाली होती थी। भास ने सेनाओं को कवच से युक्त बताया है। नाटक में अक्षौहिणी सेना का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसी नाटक के चतुर्थ अंक में जिस समय दो सामान्य भट प्रवेश करते हैं उस समय दूसरा भट कहता है कि-"आर्य! यौगन्धरायण ने केवल तलवार की सहायता से एक मुहूर्त में अक्षौहिणी सेना के वेग को सहन किया।"३

मुद्राराक्षस के अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि तत्युगीन समाज में सप्तांग राज्य की व्यवस्था थी। उस समय दण्ड से तात्पर्य सैन्य बल से लिया जाता था। सैन्यबल ४ की आवश्यकता राजा को उस समय होती थी जिस समय बाहरी आक्रमण होते थे। कभी-कभी राजा को स्वयं की रक्षा के लिए भी सेना की जरूरत पड़ जाती थी। कुलमिलाकर ये सेनाएँ राज्य की आंतरिक एवं बाह्य दोनों जरूरतों की पूर्ति करती थी। कौटिल्य ५ के अनुसार अमात्य आदि का कोप आंतरिक कोप कहलाता है। यह कोप बाह्य कोप से भयंकर माना जाता है। बाह्य कोप के अन्तर्गत

शत्रुकोप मुख्य होता है ।

नाटककार ने नाटक में पदातीत ६ , तुरगबल ७ एवं हस्तिबल ८ आदि का उल्लेख किया है । रथों का उल्लेख नाटक में नहीं प्राप्त होता है । हस्तिबल एवं अश्वबल का उस समय युद्ध की दृष्टि से बहुत महत्त्व था । इनको राज्य का मूल माना जाता था । ९ सैनिकों को प्रतिदिन सुबह-शाम शिक्षा संबंधी अभ्यास कराया जाता था जिसके लिए व्यायाम १० शब्द का प्रयोग किया जाता था । नाटक में सेना के लिए बाण ११ , शूल १२, शक्ति १३, खड्ग १४, कृपाणी १५, जैसे युद्ध के साधनों के नाम भी दिये गये हैं । उस समय अपने बचाव के लिए सैनिकों को कवच धारण करना आवश्यक था । प्रयाण काल में सेना शिविरों में निवास करती थी । नाटक में इसके लिए कटकभूमि १६ शब्द का प्रयोग किया गया है ।

मालविकाग्नि नाटक में सेना १७ तथा सेनापति १८ भी उल्लेख प्राप्त होता है । सेना ही देश की रक्षक होती थी और इसी से शत्रुओं को दंड भी दिया जाता था । नाटक में कई जगहों पर इसी का दंडचक्र के रूप में प्रयोग किया गया है ।१९ सीमाओं पर सुरक्षा के दुर्ग होते थे , सीमारक्षक को अंतपाल कहा जाता था । नाटक में वीरसेन की नियुक्ति नर्मदा तट के दुर्ग पर इसी रूप में हुई थी । अंतपाल के पास पर्याप्त मात्रा में सेनाएँ भी होती थी ।

विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस नाटक में गुप्तचर विभाग का बड़ा महत्त्व था । चर या गुप्तचर व्यवस्था पर अर्थशास्त्र की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है । कौटिल्य ने चरों के दो भेद किए हैं-- संस्था और संचार । चर के इन दोनों प्रकारो का वर्णन हिन्दी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार प्रसाद ने भी अपने नाटकों में किया है । मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य और राक्षस की कूटनीतिज्ञ लड़ाई है । तत्कालीन समाज में वर्णित चरों के भेदों में कापटिक २० ,

तापसव्यंजन २१ , क्षत्री २२, तीक्ष्ण २३ तथा रसद आदि चरों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

प्रस्तुत नाटक में विराधगुप्त का भेद लेने के लिए राक्षस ने उसे पाटलिपुत्र भेजा था। सपेरा भेष में वह भेद लेने गया था। इसकी सूचना से पता चलता है कि वह चंद्रगुप्त और उसके अनुयायियों में भेद डालना चाहता था। राक्षस ने वैतालिक को मात्र इसीलिए भेजा था जिससे उसके क्रोध में वृद्धि हो । राक्षस का दूसरा गुप्तचर प्रमोदक भी अपने प्रयत्न में विफल हो जाता है ।

उपर्युक्त वर्णनों से पता चलता है कि उस समय चरों का प्रधान कार्य राज्य के भीतर या बाहर घटने वाली घटनाओं की सूचना से अवगत कराना था। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए बहुबिध देशभाषा, वेष २५ वाले चर होते थे। गुप्तचरों की संख्या इतनी ज्यादा होती थी कि उनकी गणना करना मुस्किल होता था। कभी-कभी तो विभागाध्यक्ष को भी इनकी संख्या का निश्चित ध्यान नहीं रहता था कि किसको क्या कार्य दिया जाय।२६

(६) दण्ड विधान : ---

महाकवि भास कालीन नाटकों में राज्य में शुल्क व्यवस्था का सैद्धान्तिक पक्ष तो मजबूत दिखायी देता है लेकिन व्यवहारिक पक्ष काफी हद तक सिथिल एवं सुस्त दिखायी पड़ता है । न्याय व्यवस्था पर दृष्टिपात करने से ऐसा पता चलता है कि तत्कालीन समाज की न्याय व्यवस्था में मनु के अनुसार दण्ड देने की प्रथा का प्रचलन था। न्याय निःशुल्क होता था, न्याय करने के लिए जिस न्यायधिकारी की नियुक्ति की जाती थी उसके हाथ में केवल निर्णय का परामर्श देने की ही सत्ता विधमान थी न कि अन्तिम निर्णय लेने की। अन्तिम निर्णय राजा के हाथ में ही होता था। १ कभी-कभी न्यायाधिकारी के परामर्श का अतिक्रमण करके भी दण्ड दिया जाता था। समाज मे मृत्यु दण्ड को भी प्रचलन था। २ दण्ड व्यवस्था

इतनी सुद्धढ़ थी कि न्याय मिलने ही दण्डाधिकारी दण्ड दे दिया जाता था ।

समाज में कुछ धटनाएं ऐसी होती है जो निरत्तर गतिशील होती हुई समाज में परिवर्तित होकर घटती जाती हैं । ये घटनाएं एक होते हुए भी भले ही सामाजिक के सामने भिन्न भिन्न रूपों में प्रदीर्शित की जायें । तत्कालीन समाज में जुएमें हार हुए धन को अदा न करना, स्त्री हत्या करना, किसी राजनीतिक अपराधी का रक्षाकरना या उसकी सहायता करना इत्यादि अपराध माने जाते थे और इन अपराधों के लिए शारीरिक यंत्रणा से लेकर मृत्यु दण्ड तक देने की प्रथा थी । उक्त नाटक का पात्र आधिकारणिक तभी तो चारूदत्त से कहता है- ''आर्य-चारूदत्त, सच बोलो । इस समय तुम्हारे सुकुमार शरीर पर कठोर बेत पडेगें । उन्हें निर्भीक होकर सहो ।''३ तत्युगीन समाज में प्राणदण्ड देने का कार्य करने के लिए एक निश्चित जाति नियुक्ति की गयी थी जिसे ''चाण्डाल''कहा जाता था । प्राणदण्ड देने का कार्य चाण्डाल लोग श्मशान पर करते थे । कभी कभी जिस व्यक्ति को प्राणदण्ड देना होता था उसे स्वयं अपने अपराध की धोषणा करने के लिए बाध्य किया जाता था । मृत्यु दण्ड प्राप्त व्यक्ति के लिए शरीर पर आतचलाकर, मार डालने, विष खिलाने, पानी में डुबो देने, यंत्र पर चढ़ा देने अथवा अग्नि में झोंक देने आदि की प्रथाएं प्रचलित थी । इन अपराधीयों को कभी कभी राजा के यहाँ प्रत्रोत्सव, राज्य परिवर्तन जेसे अवसरों पर मुक्त करने की प्रथा का भी प्रचलन था । ४

उपर्युक्त पूर्वकालीन समस्त घटनाएं(स्त्री हत्या, जुएमें हारे धन को न देना, हत्या करना इत्यादि अपराध) किसी न किसी रूप में तत्युगीन समाज में भी थी और आज के समाज में भी वे घटनाएं घट रही है । भले ही घटनाओं का रूप परविर्तन हो गया हो । दण्ड की व्यवस्था जैसी पहले थी वैसी आज भी है । हाँ आज के दण्ड

विधान जेल में डालना, जुर्माना देना, इत्यादि प्रमुख है ।

मृच्छकटिकम् कालीन नाटक का अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है क तत्कालीन समाज में वध, अर्थग्रहण एवं पटिक्लेथ इन तीन दण्ड विधानों का महत्व था जिसका वर्णन हमें "कामन्दक" ५ में भी प्राप्त होता है । तत्युगीन राजा बहुत कठोर होता था वह राजविद्रोह करने वाले को कठोर दण्ड देता था । उसे कभी भी क्षमा नहीं करता था । ६ हत्या इत्यादि करने वाले व्यक्ति को प्राणदण्ड तक की सजा दी जाती थी यह दण्ड दो प्रकार का होता था - उपांशुबध और विचित्र वध । किसी व्यक्ति की हत्या के अभियोग ७ में फँसे हुए व्यक्ति को सूली पर चढ़ाया जाता था । ऐसे व्यक्तियों के वध की धोषणा करते हुए कंधे पर शूल ८ धारण किए हुए शूल आयतन ९ उसे राजमार्ग से होते हुए वध्य सीन या वध्यभूमि की ओर जाते थे । लोहे से बने उस शूल को वध्यभूमि में गाड़ दिया जाता था । १० शूली पर चढ़ाकर मृत्यु दण्ड प्राप्त व्यक्ति से ज्यादा पीड़ा या कष्ट हाथी के पैर तले कुचलना, अथवा गड़ढा खोदकर उसके ऊपर मिट्टी डाल देने से प्राप्त होता था । तत्युगीन इस प्रथा का प्रचलन ज्यादा था । नाटक के पात्र मलयकेलु को जब यह पता चलता है कि उसके सहायक पाँच राजा उसके साथ षड़यत्र कर रहे है, उस समय वह क्रोधित होता है और अपने सेनापति को आज्ञा देता है ओर कहता है कि- "इस राक्षस का साथ देने वाले और हमारा प्राण लेकर चन्द्रगुप्त की प्रसन्नता के इच्छुक पाँचो राजाओं में जो हमारे तीन राज्य में आँख गड़ाए हैं उन्हें तो एक गहरे गड़ढे में डालकर मिट्टी से तोप दिया जाय और बाद के जो दो बचें, हमारी गजसेना के लोभी हैं उन्हें हाथियों के पैर तले रौंदवाकर मार डाला जाय ।"११दण्ड का यह विधान वस्तुतः आयन्त कठोर था । प्रस्तुत नाटक में दण्ड का एक ऐसा विधान भी प्राप्त होता है जिसमें राजा की ओर से अपराधी को बहुत सी यातनाएं दी

जाती थी। साथ ही साथ उसके सारे उपकरणों को दीनकी विभिन्न प्रकार की प्रताड़नाएं भी मिलती थी। १२

दण्ड के उपर्युक्त प्राकर के अतिरिक्त तत्युगीन समाज में देश निकाला भी एक प्रकार के दण्ड का प्रचलन था। इसमें व्यक्ति को देश से निष्काषित कर दिया जाता था। इस प्रकार के दण्ड की धोषणा ''राजपुरूष'' लोग दण्डाधिकारी या अपराधी के पीछे-पीछे सम्पूर्ण नगर में घूमकर उसे देश की सीमा के बाहर निकाल दिया जाता था। १३ छोटे-बड़े अपराध करने वाले अपराधियों को मारने-पीटने की भी प्रथा थी। शायद उस समय ऐसी मान्यता थी कि अपराधियों को मारने या पीटने से सम्पूर्ण सत्या का उद्धाटन हो जाता है। १४ साथ ही साथ कई रहस्य की बातें भी जानने को मिल जाती हैं। १५ उपर्युक्त सभी दण्डों से बचने के लिए लोग प्रयत्न भी करते थे। वध्यस्थल में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार के शस्त्रादि नहीं ले जा सकता था किन्ही कारणों से यदि कभी ऐसा संभव होता था कि घातक सशस्त्र हमला बोल सकेगा या ऐसी कोई शंकाहो जाती थी तो वध्यव्यक्ति का बीच में ही वध कर दिया जाता था। १६

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण :---

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनीति की चर्चा करने से पूर्व हम यह बता चुके हैं कि राजनीति का अर्थ क्या है ? उसकी परिभाषा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? अतएव उन सबकी पुनः चर्चा करके मात्र पृष्ठपेषण करना निरर्थक समझता हूँ । इसलिए इसके अन्तर्गत हमने उन तमाम हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों को लिया है जिनमें राजनीति के संदर्भ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं । जिसके तहत राजा की परिभाषा, उसके उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य, उसकी शक्ति, योग्यता, दण्ड-विधान, उसके मंत्रिपरिषद एवं उसके कर्त्तव्यों , नीति-निर्धारण आदि संदर्भों के संकेत नाटकों में पात्रों के द्वारा नाटककारों ने दिया है । यहाँ हम उन पहलुओं का संकेत करने जा रहे हैं जिनका विस्तृत विवेचन हमें करना है ।

१- राजा एवं उसके कर्त्तव्य
२- परिषद और उसके कार्य
३- न्याय व्यवस्था
४- युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीति
५- सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था
६- दण्ड-विधान

१- राजा एवं उसके कर्त्तव्य :---

तत्कालीन शासन-प्रणाली में राजा की अहम भूमिका होती थी । वह राज्य का सर्वेसर्वा होता था । उसकी आज्ञा का पालन करना सभी को अनिवार्य होता था । अधिकांशतः नाटकों में राजा धीरोदात्त नायक के रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं । वे सदैव धर्म-पथ पर चलते थे और प्रजा के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहते थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत की दुर्दशा एवं उसकी दयनीय स्थिति

को देखकर बड़े व्यथित होते हैं और अपने नाटक "नीलदेवी" में यह दिखाते हैं कि राजा धर्मात्मा होते हुए भी अधर्म-युद्ध में मारा जाता है , जब धर्म का ह्रास हो रहा हो और अधर्म बढ़ रहा हो ऐसे समय में असहाय जनता की सुरक्षा का एक ही मार्ग शेष रह जाता है वह है ईश्वर की शरण में जाना । भारतेन्दु जी धर्म पर अधर्म की विजय देखकर जनता को भगवत्स्मरण करने की प्रेरणा देते हैं और भारत वर्ष की दशा आने वाले कल में क्या होगी ? इसका संकेत वसंत और पंडित पात्रों के माध्यम से इस प्रकार प्रकट करते हैं -

"हाय ! अब भारत वर्ष की कौन गति होगी ? अब त्रैलोक्य ललाम सुता भारत कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथा सुख दलन करेंगे । अब स्वाधीनता का सूर्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करेगा । हाय ! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है । हाय ! धार्मिक वीर पुरूष की यह गति ।

कहाँ करूणानिधि केशव सोये
जागत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये

\+ + +

सब विधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अबहु बचाई ।"१

उपर्युक्त पंक्तियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज की प्रजा राजा को ही सर्वश्व समझती थी उसकी अनुपस्थिति प्रजा के लिए एक चिंता का विषय बन जाती थी । दुर्भाग्यवश अगर राजा की मृत्यु हो जाय , ऐसी अवस्था में प्रजा अपने आपको असुरक्षित मानकर भगवत्स्मरण करने लग जाती थी ।

तत्कालीन समाज में राजा वीरगति को भले ही प्राप्त हो जाय लेकिन धर्मपरिवर्तन या दासता स्वीकार नहीं करता था । नीलदेवी नाटक में अमीर के सैनिक राजा सूर्यदेव पर रात्रि में धावा बोलकर उन्हें बंदी बना लेते हैं तथा राजा से मुसलमान सैनिक धर्मपरिवर्तन की बात करते हैं । इस पर राजा सूर्यदेव बंद पिंजड़े में से उनके मुंह

पर थूकते हुए कहते हैं कि -"दुष्ट ! हमको पिंजड़े में बंद और परवश जानकर ऐसी बात करता है ! क्षत्री कहीं प्राणा के भय से दीनता स्वीकार करते हैं । तुझ पर थू और तेरे मत पर थू ।"२ जिस समय यवन उसे मारने के लिए अस्त्र लेकर दौड़ते हैं उसी समय वह कई यवनों का संहार करके स्वयं वीरगति को प्राप्त हो जाता है ।

तत्कालीन समाज में राजा को अनेक संबोधनों से संबोधित किया जााता था । जैसे - राजा, राजन् , सम्राट, मगध-नरेश, महाराज, परमेश्वर आदि । चन्द्रगुप्त नाटक में पर्वतेश्वर का यह वाक्य इस बात की पुष्टि करता है--"मैं विश्वस्त हृदय से कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्यावर्त का एक क्षत्र सम्राट होने के उपयुक्त हैं ।" ३

वेदों , उपनिषदों एवं भाष्यादि में राजा के विविध नामों की चर्चा के साथ-साथ राजा या सम्राट किसे कहा जाय इन बातों पर भी ध्यान दिया गया है । भाष्य में ऐसा संकेत प्राप्त होता है कि जो भलीभाँति राज्याभिषेक से मंडित होकर राजा बने उसे ही सम्राट कहा जा सकता है ।४ लेकिन शुक्रनीति में इन सभी बातों पर विचार करते हुए यह बताया गया है कि "तीन लाख कार्षायण कर प्राप्त करने वाले शासक को सामंत, तीन लाख से दस लाख की आय प्राप्त करने वाले को मांडलिक, दस से बीस लाख की आय वाले राजा , बीस से पचास लाख तक की आय वाले को महाराज, पचास से एक करोड़ तक की आय वाले को स्वराट, एक करोड़ से दस करोड़ तक की आय वाले को सम्राट, दस से पचास कोटि पर्यन्त आय वाले को विराट और पचास कोटि से अधिक आय वाले को सार्वभौम कहा जाता है । उसके बश में सप्तद्वीपा पृथ्वी सदा सर्वदा रहती है ।"५

प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में राज्य शक्ति पिता से पुत्र के हाथों में आती थी, जिसका प्रचलन आज आधुनिक समाज में भी देखा जा

सकता है । राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबंध करके उनको सुयोग्य शासक बनाने तक का कार्य राजा का कर्त्तव्य माना जाता था । ६ राजकुमारों की विशेष शिक्षा हेतु उनको पाँच वर्ष तक तक्षशिला जैसी विद्यापीठों में रहकर अध्ययन करना पड़ता था । ७ जिसकी शिक्षा का अधिकार राजमाता को होता था । ८ यही नहीं नीति सिद्धान्त के अनुसार भी जेष्ठ पुत्र को ही राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार मिलना चाहिए । ९ वानप्रस्थ आश्रम का समय आने के पूर्व ही राजा परिषद को बुलाकर सबकी उपस्थिति में पुत्र का राज्याभिषेक कर देता था । अगर युवराज की उम्र कम होती थी तो वह मंत्रपरिषद की सहायता से राज्य का कार्यभार संभालता था । उस समय युवराज के विवाह में भी राजा की स्वीकृति आवश्यक समझी जाती थी । १० शतपथ ब्राह्मण , जातक ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि में भी उपरोक्त संदर्भ देखने को मिलते हैं । और प्रसाद के सभी ऐतिहासिक नाटक के कथानक भी इस संबंध में ऐतिहासिक सत्य को मानकर ही चले हैं ।

जैसा कि सर्वविदित है , वर्तमान में जो भी घटित होता है उसका संबंध कुछ न कुछ, किसी न किसी रूप में पूर्व की स्थितियों या परिस्थितियों से अवश्य होता है । इसी प्रकार राजा के राज्याभिषेक का प्रचलन भी भारत में वैदिक काल से ही देखा जा सकता है । ब्राह्मण ग्रन्थों में एवं पुराणों में इस संबंध के पर्याप्त विवरण मिल जाते हैं । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार महाभिषेक के पूर्व क्षत्रिय को श्रद्धापूर्वक शपथ लेनी पड़ती थी -''यदि मैं तुमसे द्रोह करूँ तो मेरे सारे पुण्य, मेरा धर्म, मेरी आयु और मेरी प्रजाएँ सबसे मैं वंचित कर दिया जाऊँ ।''११

प्रसाद के नाटकों में कुछ ही स्थलों पर प्राप्त होता है । चन्द्रगुप्त नाटक में नन्द वध के उपरान्त चाणक्य राक्षस से कहता है कि सिहासन खाली नहीं रह सकता । अमात्य राक्षस का राज्याभिषेक कीजिए ; राक्षस चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़कर सिंहासन पर बैठाकर

उसकी जय-जयकार करता है तत्पश्चात चाणक्य चन्द्रगुप्त को उपदेश देता है । चाणक्य के शब्दों में- "स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहाँ तक दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा न पड़े । यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है । वत्स चन्द्रगुप्त स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है । अब मंत्रिपरिषद की सम्मति से मगध और आयावर्त के कल्याण में लगो ।"१२ इसी प्रकार 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त का राज्याभिषेक उज्जयिनी की राज्यसभा में होना बताया गया है स्कन्दगुप्त राज्याभिषेक के दौरान गोविन्दवर्मा एवं बंधुवर्मा के समक्ष राष्ट्र के उत्तरदायित्व का पालन करने की प्रतिज्ञा करता है । गोविंद वर्मा एवं बंधु वर्मा स्कन्दगुप्त को सिंहासन पर बैठाते हैं । देवसेना चमर डुलाती है तथा देवकी राजतिलक करती हैं । गोविन्दगुप्त उसी समय उसे खण्ड्ग का उपहार देते हैं एवं चक्रगरूडांकित राजदण्ड देता है । तत्पश्चात् परमभट्टार्क महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त की जय-जयकार की ध्वनि सभा में गूँजने लगती है । भरी सभा में वहाँ पर उपस्थित समस्त राज्य सभा के सम्मुख गोविन्दगुप्त को संबोधित करते हुए स्कन्दगुप्त आकांक्षा प्रकट करते हुए कहते हैं कि-"आर्य इस गुरूतर उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूँ और आर्यराष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व अर्पण कर सकूँ......और अपने कर्त्तव्य से , स्वदेश सेवा से कभी विचलित न होऊँ ।"१३

हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा रचित "शिवा साधना" नाटक में शिवा जी जो कि नाटक के नायक भी हैं और राजा भी , वे अपने संपूर्ण जीवन को राज्य की रक्षा के लिए अर्पित कर देना चाहते हैं । शिवा जी का मात्र एक लक्ष्य था भारत को स्वाधीन कराना । इसीलिए वे अपने मित्रों से कहते हैं --"मेरे शेष जीवन की एक-मात्र साधना होगी, भारत वर्ष को स्वतंत्र करना । दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की

क्रान्ति करना ।''१४

इसी नाटक का शिवा केवल नाटक का ही नायक नहीं बल्कि वह समस्त राष्ट्र का नायक है । उन्हें भारतभूमि को स्वाधीन कराने तथा दीन-दुखियों सुखी बनाने की चिंता है , तभी तो शिवा जी जयसिंह से कहते हैं -''मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मुझे व्यक्तिगत रूप से राज्य नहीं चाहिए , धन-ऐश्वर्य नहीं चाहिए, सुकीर्ति भी नहीं चाहिए । मैं तो माँ-भारत को दीन-दुःखी देखकर व्यथित हूँ । मैं उसे स्वाधीन देखना चाहता हूँ ।''१५ इस नाटक का नायक शिवा अपनी साधना के प्रति सतत जागरुक है और वह एक नायक होने का कर्त्तव्य भी पूर्णरूपेण निभाता है । शिवा की कामना है कि-''मैं मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकूँ । मैं शिवा जी की जय, के नारे सुनकर इतना पुलकित न हो जाऊँ कि दीन-दुखियों की आवाज न सुन सकूँ ।''१६

आलोच्यकालीन नाटक में राजा या सामंती वर्ग देशप्रेम के प्रति सजग था । वह इसके लिए समाज के समस्त वर्ग को एकत्रित होने के लिए कहते है --''मैं दरिद्र किसानों, अभावग्रस्त श्रमजीवियों और मध्यवर्ग के साधनहीन व्यक्तियों को लेकर स्वाधीनता की साधना कर रहा हूँ । यदि मुझे राजा , महाराजाओं और सम्पत्तिवान वर्ग का भी सहयोग मिलता तो विदेशी शासन कितने दिन टिक सकता था ।''१७

शिवा साधना का शिवा जातिगत भेदभाव को भूलकर समस्त जातियों के प्रति स्नेह एवं भ्रातृत्व भाव रखते हुए कहता है कि-''मैंने कभी किसी की एक ईट को भी आँच नहीं आने दी । जहाँ मुझे कुरान मिला है उसे आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहुँचा दिया है ।''१८

देश की आर्थिक व्यवस्था जिस रूप में चल रही है यदि इसी रूप में चलती रही कि धनी और धनी होते जाएंगे तथा गरीब और गरीब होते जाएंगे तो निश्चित रूप से एक न एक दिन शोषित वर्ग

का क्षोभ विद्रोह का रूप धारण कर लेगा और क्रान्ति पैदा हो जाएगी । शिवा साधना नाटक का नायक शिवाजी ऐसा मानकर कि दरिद्रता ही गुलामी की जड़ है इस उद्देश्य से अपने जीवन का लक्ष्य दरिद्रता को पूर्णरूपेण खत्म करने में मानते हैं । इसी नाटक के अन्य पात्र समर्थ गुरू तथा रामदास जी देश की आर्थिक विषमता देखकर शिवाजी को समझाते हुए कहते हैं कि देश की आर्थिक स्थिति सुधारना राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है और वह तब तक नहीं सुधर सकती जब तक देश पराधीन है , परतंत्र है । १९

राजा को अपने कर्त्तव्य का पूर्णरूपेण ध्यान रखना चाहिए । राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य देश व राष्ट्र की रक्षा करना है । इसी उद्देश्य की पूर्ति 'शिवा साधना' नाटक के नायक शिवाजी भी करते हैं । शिवा जी उस शासन से पूर्णरूपेण खिलाफ हैं जो प्रजा की आवाज सुनकर उसे कुचलने या समाप्त करने की कोशिश करते हैं । शिवाजी बीजापुर और दिल्ली के मुस्लिम शासकों की जड़ को इसलिए समाप्त करना चाहते हैं क्योंकि दोनों शासन एकत्र हैं और प्रजा की आवाज कुचलने के आदी भी हैं । राजा को जनता की जाति के रूप में ही राज ग्रहण करना चाहिए । अगर किन्ही कारणों से ऐसा संभव नहीं होता तो वह चिरस्थाई राज्य नहीं हो सकेगा । इसी नाटक का अन्य पात्र समर्थ गुरू रामदास शिवा जी को जनता जनार्दन के विश्वास एवं उपहार रूप में राज्य स्वीकार करने की सलाह देते हैं तथा सावधान करते हुए कहते हैं कि- तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है आजीवन पर्यन्त जनकल्याण की भावना का ध्यान रखना ।२० इस नाटक का नायक शिवा एक राजा के संपूर्ण कर्त्तव्यों का पूर्णरूपेण पालन करना चाहता है और अपने प्राणों आहुति तक देश के कल्याणार्थ दे देना चाहता है । इसी उद्देश्य से शिवा माँ भवानी से प्रार्थना करते हुए कहता है -''माँ भवानी ! इस उज्ज्वल आकांक्षा की आग को अपने आशीर्वाद से तीव्र कर दो , मुझे बल

दो, साहस दो, और वह अदम्य पागलपन दो, जिससे मैं स्वातंत्र्य साधना में केवल सांसारिक सुखों को ही नहीं बल्कि प्राणों की आहुति भी दे सकूँ । निस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त और निरहंकार होकर कर्म कर सकूँ ।''२१

२- मंत्रिपरिषद और उसके कार्य :---

नाटकों में परिषद के लिए मंत्रिपरिषद , राज्य परिषद आदि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग होता है । परिषद या मंत्रिपरिषद राजा या राजकुमार के शासनकार्य संचालन में सहायक होती है । अजातशत्रु नाटक में भी ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि समय-समय पर युद्धादि में जाते समय किन्हीं कारणों से राजा या राजकुमार अनुपस्थित भी हों तो ऐसी अवस्था में राज्य का कोई भी कार्य सफर न करे ऐसी अवस्था में परिषद स्वयं अपने सिर पर राज्यभार ले लेती थी ।१ किसी भी प्रकार के राष्ट्रीय संकट के समय यदि राजा उपस्थित नहीं होता था तो उस समय भी अंतिम निर्णय भी परिषद के हाथ में होता था । २ जिस प्रकार आज सरकारी अथवा गैरसरकारी संस्थाओं में किसी भी प्रकार के आवश्यक निर्णय हेतु उच्चाधिकारी अपने से नीचे कार्य करने वाले कार्यकर्त्ताओं की गोष्ठी बुलाकर चर्चा-विचारणा के बाद ही अंतिम निर्णय घोषित करता है , ठीक उसी प्रकार तत्कालीन नाटकों में भी किसी भी प्रकार के महत्त्वपूर्ण निर्णय को प्राप्त करने के पूर्व परिषद की सहमति आवश्यक होती थी । राजा ऐसे अवसरों पर स्वयं परिषद का आह्वान करके उनके सदस्यों से पूर्ण सहमति प्राप्त करता था । ३ जिस प्रकार आज के युग में संसद में चल रही मीटिंग (गोष्ठी) में प्रधान मंत्री किसी मंत्री की या किसी एक सांसद की संमति को तो ठुकरा सकता है लेकिन सभी मंत्रिपरिषद की राय को नहीं । ठीक उसी प्रकार तत्कालीन नाटकों में भी परिषद के बिना कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य संभव नहीं

था। परिषद का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राजा को स्वेच्छाचारी होने से बचाना था। चाणक्य के कथन से इस बात की पुष्टि स्पष्ट हो जाती है --"स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है अब मंत्रिपरिषद की संमति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगो।"४ परिषद राज्याधिकार संबंधी कोई भी निर्णय ले सकती थी, जो सर्वमान्य समझा जाता था। किसी भी प्रकार का अन्तिम निर्णय परिषद ही करती थी। एक प्रकार से परिषद ही अन्तिम निर्णायिका होती थी। इसका विचार राजा, प्रजा, अमात्य अथवा अन्य कोई भी व्यक्ति को मानना पड़ता था। यहाँ तक कि यदि राजा या सम्राट को भी परिषद दोषी पाती थी तो उसे भी राजसिंहासन से हटा सकती थी।५

परिषद का जो स्वरूप प्राचीन भारत में उपलब्ध था वही प्रसाद के नाट्कों में भी चित्रित पाया जाता है जिस प्रकार परिषद की महत्ता प्रसाद के नाटकों में पायी जाती है उसी प्रकार प्राचीन भारत में भी थी। इससे ऐसा अंदाजा लगाया जा सकता है कि प्रसाद ने परिषद का जो आधार अपने नाटकों में लिया है वह प्राचीन भारत की परिषद का स्वरूप है। इसी संदर्भ में जयसवाल जी लिखते हैं कि -"हिन्दू विधान के अनुसार राजा बिना मंत्रिपरिषद की आज्ञा तथा सहयोग से कोई भी कार्य करने में असमर्थ है।"६ मनु ने भी परिषद की महत्ता को स्वीकार किया है। उनका मानना है कि राजा स्वेच्छा से शासन नहीं कर सकता है उसे सामान्य विषयों के लिए भी परिषद से मंत्रणा करनी चाहिए।७ कात्यायन तथा कौटिल्य ने भी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी पौलिटी' तथा 'अर्थशास्त्र' में राजा को मंत्रिपरिषद की अवमानना न करने की आज्ञा देते हुए लिखा है कि-

"सप्राड्विवाकः सामाप्यः सब्राह्मण पुरोहितः।
ससभ्यः प्रेक्षको राजा स्वर्गे तिष्ठति धर्मतः॥" ८

''आत्यायिके कार्ये मंत्रिणो मंत्रिपरिषद् च अह्यब्रूयात् ।

तत्र यद्भयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयस्ततंकुर्यात् ।।''९

शुक्रनीति में भी यह कहा गया है कि राजा भले ही समस्त विद्याओं एवं कलाओं में निपुण हो तथा मंत्रविद् भी हो लेकिन मंत्रियों से परामर्श किये बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकता ।

''सर्व विद्या सकुशलो नृपोह्यपि सुमंत्रवित् ।

मंत्रिभिस्तु बिना मंत्रनेकोऽर्थचिंतएत्क्वचित् ।। ''१०

जिस प्रकार नाटकों में परिषद के लिए मंत्रिपरिषद, राज्य परिषद या परिषद शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका आधार प्राचीन ग्रन्थ रहा है उसी प्रकार परिषद में सदस्यों की संख्या कितनी होनी चाहिए इस पर भी सभी विद्वान एक मत नहीं पाये जाते हैं । प्राचीन ग्रन्थों में इसकी संख्या किसी ने २०, किसी ने २५, किसी ने १६ तथा किसी ने ३२ आदि मानी है । इसी प्रकार नाटकों में भी ५,१० आदि संख्याएँ निर्धारित हुई है, लेकिन प्राचीनकाल से लेकर आज तक निश्चित संख्या का निर्धारण अभी भी नहीं हो पाया है ।

उपर्युक्त विवरण से पूर्णरूपेण यह निश्चित हो जाता है कि परिषद का पहला और प्रमुख कार्य शासक या राजा की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति को रोकना था । दूसरा कार्य आत्यायिक कार्यों में राजा को सलाह देना था तथा तीसरा और अंतिम कार्य राजा की अनुपस्थिति या मृत्यु के दौरान शासन का कार्यभार सुचारू ढंग से चलाना था । मंत्रिपरिषद दूसरे राजा की नियुक्ति भी कर सकती थी । इसी संदर्भ में डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी जी लिखते हैं कि - ''परिषद द्वारा राजा का चुनाव केवल गुप्तकाल तक ही नहीं था बल्कि सातवीं सदी में राजपद के लिए हर्ष का चुनाव भी मंत्रिपरिषद की उपस्थिति में हुआ था । युवाान च्वांग ने लिखा है 'प्रभाकर वर्धन एवं राज्य वर्धन की मृत्यु के उपरांत राज्य के शासक बिहीन

होने पर भी परम यशश्वी, महामान्य प्रधानामात्य ने मंत्रिपरिषद से कहा - आज राष्ट्र के भाग्य का निर्णय करना है। कुमार राज्यवर्धन की मृत्यु हो चुकी है और उनका भाई मानवोचित्य गुणों से पूर्ण और सहृदय होने के साथ कर्त्तव्यपरायण तथा आज्ञाकारी भी है। अतः प्रजा उसका विश्वास करेगी। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि राज्याधिकार हर्षवर्धन को सौंपा जाय। इस संबंध में प्रत्येक अपना स्वतंत्र विचार उपस्थित करें।' इस पर सभी मंत्रियों ने उसके गुणों को स्वीकार करते हुए इस प्रस्ताव का समर्थन किया। तब महामात्य और अन्य अधिकारियों ने राजकुमार से निवेदन किया कि इस अभिलाषा की पूर्ति कर राज्य शासन कर यशस्वी बने।''११ प्रसाद के नाटकों से ज्ञात होता है कि युवराज पद के लिए और यौराज्याभिषेक एवं राज्याभिषेक के पूर्व भी परिषद की सहमति आवश्यक होती थी। १२

ध्रुवस्वामिनी नाटक में ध्रुवस्वामिनी को लेकर उठे हुए रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के विवाद का निर्णय करने के लिए भी परिषद एकत्रित की जाती है। १३ चन्द्रगुप्त नाटक में परिषद का चुनाव जनतांत्रिक ढंग से बताया गया है। नंद की मृत्यु के उपरांत नागरिकजन चन्द्रगुप्त, चाणक्य,राक्षस, वररूचि और शकटार की सम्मिलित परिषद की घोषणा करते हैं। १४

शक विजय नाटक में भी कालकाचार्य धार्मिक संकीर्णता की भावना के फलस्वरूप शकों को भारत आने का निमंत्रण देता है लेकिन मालव गढ़ के राजकुमार ने वरदशक्ति एकत्रित करके उनको देश से निकाल दिया। जिसके परिणाम स्वरूप एक परिषद की स्थापना होती है जिसमें धार्मिक नीतिविषयक चर्चा होती है। धार्मिक नीति पर चर्चा करने के लिए नृपति सभा से आग्रह करता है --''परस्पर धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भी आवश्कता है। प्रत्येक नृपतिगण जाति को अपेक्षित है कि वे एक-दूसरे के प्रति उदार हों।''१५

तत्कालीन परिषद का प्रमुख कार्य राज्य के कार्यभार को सुचारू ढंग से चलाने में सहायता देना होता था । १६ किन्हीं कारणों से राजा यदि अल्पावस्था या अल्पायु का होता था तो कोई अन्तिम निर्णय परिषद की ही मदद से करता था । १७ युद्धादि संबंधी विषयों पर नीति-नियमों को निश्चित करना मंत्रिपरिषद का प्रमुख कार्य माना जाता था । १८ राजा को स्वेचछाचारी होने से रोकना १९ राजा पर किसी भी प्रकार के लगाये गये आरोपों को सुनना २० भी मंत्रिपरिषद का ही कार्य होता था । इस प्रकार उपर्युक्त सभी कार्यों में परिषद की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी । परिषद या मंत्रिपरिषद में मंत्री का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता था । राजाओं की सहायता हेतु और शासन का काम-काम सुचारु ढंग से चल सके इसके लिए राज्य का मंत्री होना अत्यंत आवश्यक माना जाता था । २१

३- न्याय-व्यवस्था :---

प्रजा की रक्षा करना राजा का सर्वप्रथम कर्त्तव्य होता है । जो कर्त्तव्य एक गृहस्वामी का अपने परिवार के प्रति , मालिक का अपने नौकर के प्रति , माँ का अपने बेटे के प्रति होता है , ठीक वही कर्त्तव्य एक राजा का अपने प्रजा के लिए होना चाहिए । कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में ऐसा संकेत प्राप्त होता है कि न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करना एक राजा का परम कर्त्तव्य होता है तथा जो राजा प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ होता है उसका दण्ड धारण करना निरर्थक होता है । १ केवल राजदण्ड ही लोक और परलोक में राजा की रक्षा करता है । २ चूँकि राजा के न्याय अन्याय पर ही प्रजा पूर्णरूप से आधारित होती है इसलिए राजा को मित्र एवं शत्रु दोनों का निष्पक्ष न्याय करना चाहिए । तभी तो ''अजातशत्रु'' नाटक का विरुद्धक अपने पिता से न्याय चाहता है ।

प्रशेनजित कहता है कि यहाँ मैं पिता नहीं एक राजा हूँ । कहीं-कहीं पर प्रसाद ने अपने नाटकों में क्षमा से ज्यादा महत्त्व न्याय को दिया है । लेकिन कहीं पर क्षमा को इतना महत्त्व दे दिया है कि धर्मशास्त्र एवं दण्डनीति भी कमजोर पड़ गई है । इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी कहते हैं कि -"धर्माधिकारी विरूद्धक को राजद्रोह के लिए प्राणदण्ड की व्यवस्था देता है , परंतु प्रत्यक्ष रूप से मल्लिका एवं अपरोक्ष रूप से बुद्ध से प्रभावित प्रसेनजित कहता है , धर्माधिकार पिता का हृदय कितना सहृदय होता है कि नियम उसे क्रूर नहीं बना सकता । मेरा पुत्र मुझसे क्षमा-भिक्षा चाहता है । धर्मशास्त्र के उस पत्र को उलट दो मैं एक बार अवश्य क्षमा कर दूँगा । उसे न करने से मैं पिता नहीं रह सकता । ३ मैं जीवित नहीं रह सकता । इसी प्रकार स्कंदगुप्त के राज्याभिषेक के समय देवकी कहती है वत्स आज तुम्हारे शुभ महाभिषेक में एक बूंद भी रक्त न गिरे । तुम्हारी माता की यह मंगल कामना है कि तुम्हारा शासन दण्ड, क्षमा के संकेत पर चला करे । ४ इन दोनों उदाहरणों में क्षमा को दण्ड से ऊपर रख दिया गया है ।" ५ इस प्रकार क्षमा का समर्थन शुक्रनीति के इस पंक्ति के आधार पर किया जा सकता है । जहाँ दण्डनीति में भी क्षमा के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया है --

"क्षमायायत्तु पुण्यस्यात्ततिकं दण्डनिपातनात् ।
स्वप्रजादण्डनाच्छेयः कथं राज्ञो भविष्यति ।। "६

प्रसाद के नाटकों में अधिकतर राजा को न्यायाधीश के रूप में भी चित्रित किया गया है । अजातशत्रु नाटक में श्रावस्ती की राज्य सभा में प्रसेनजित अपने पुत्र विरूद्धक और राजमहषी को शक्तिमती के विरूद्ध एक पिता के रूप में नहीं बल्कि एक न्यायाधीस के रूप में व्यवस्था करता है ।७ चन्द्रगुप्त नाटक में मगध की राजसभा में शकटार, नंद, वररूचि, चाणक्य, मौर्य एवं चन्द्रगुप्त की

माँ को न्याय की तुला पर पूर्णरूपेण तौलकर उन्हें दण्डित किया जाता है । ८ स्कंदगुप्त नाटक में जिस समय स्कंदगुप्त उज्ज्यनी में अभिशिप्त होता है उसी समय वह बंदियों का न्याय करता है । ९

धर्मशास्त्र एवं प्राचीन ग्रंथों में ऐसा कहा गया है कि यदि राजा प्रजा के प्रति दुष्टता या अन्याय का प्रदर्शन करे तो उसे भी दंडित करना चाहिए । शुक्रनीति के अनुसार दण्डनीति ही राजा के समस्त उपकर्मों को पूर्ण करती है तथा दण्ड ही सभी धर्मों की उत्तम शरण है । १० मनु भी प्रजा की रक्षा हेतु दण्ड धारण करना आवश्यक समझते हैं । ११ इसी परम्परा का पूर्णरूप से निर्वाह करता हुआ चन्द्रगुप्त नाटक का नायक चन्द्रगुप्त स्वयं अपने पिता के अपराध को क्षम्य न करके उसके साथ न्याय करना उचित समझता है । १२ अजातशत्रु नाटक में गौतम बिम्बसार से कहता है कि ''विरक्तों को भी राजदर्शन की आवश्यकता इसलिए हो जाती है कि न्याय का पक्ष विजयी हो ।''१३

उपर्युक्त समस्त संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में राजा का अधिकार सुरक्षित था और किसी भी प्रकार का अन्तिम निर्णय राजा के हाथ में ही होता था । स्कंदगुप्त नाटक में काश्मीर के एक न्यायाधिकरण का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ पर न्यायिक राजा नहीं बल्कि एक कुमार अमात्य होता है ।१४ इससे हम इस निष्कर्ष तक पहुँच जाते हैं कि कुमार अमात्य तत्कालीन समाज में उसे ही कहा जाता था जो राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था और न्याय-व्यवस्था को सुलभ करते हुए प्रजा के हित में न्याय करता था । राजा और कुमार अमात्य को न्याय पथ की ओर अग्रसर करने के लिए राजदण्ड की व्यवस्था भी होती थी । राज-व्यवस्था का पूर्ण पालन करने वाला राजदण्ड, धर्मशास्त्र तथा परंपरा के आधार पर होता था । अर्थशास्त्र के धर्मशास्त्र के प्रकरण में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि शास्त्र के उचित

आधार को ध्यान में रखते हुए निर्णय करना चाहिए अगर उसके विरोध में निर्णय दिया जाता है तो धर्मयुक्त एवं शास्त्रसंमत नहीं कहा जाएगा। अर्थशास्त्र में कौटिल्य लिखते हैं कि-

"संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम्।
यस्मिन्नर्थे विरूध्येत धर्मेणार्थ विनिर्णयेत ।।
शास्त्र विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केवाचित्।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ।। "१५

अजातशत्रु नाटक के अध्ययन से यह पता चलता है कि राजद्रोह करने वाले को मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। प्रसाद इस दण्ड व्यवस्था को शास्त्रसंमत भी मानते थे।१६ जातक ग्रंथों में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि राजद्रोही को शूली पर चढ़ाया जाता था। चन्द्रगुप्त नाटक के नायक को राजद्रोह का दण्ड आजीवन कारावास, अंधकूप एवं देशनिष्काशन होता है। अर्थशास्त्र में ऐसा लिखा गया है कि राज्य की कामना करने वाले को, अंतःपुर की अव्यवस्था में सहयोग देने वाले को, शत्रुओं की मदद करने वाले या उन्हें उत्तेजित करने वाले को, सेना को राजा के खिलाफ भड़काने वाले को एवं राजद्रोह करने वाले को मृत्युदण्ड अवश्य देना चाहिए। लेकिन ब्राह्मण को मृत्युदण्ड देने का विधान नहीं है, बल्कि उसे अंधकूप में डालने का विधान है।१७

४- युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीतिः---

युद्धनीति या संधि के द्वारा अपने राज्य का विस्तार करना तत्कालीन नाटककारों के नायकों ने अपना मुख्य विषय माना है। तत्कालीन समाज का कोई भी राजा अपने राज्यों का विस्तार करने के लिए युद्ध या संधि के माध्यम से किसी भी राज्य पर आक्रमण करके उसे अपने राज्य में मिला लेना ही सबसे बड़ी रणनीति या राजनीति समझता था। "अजातशत्रु" नाटक में

अजातशत्रु की माँ की इच्छा अजातशत्रु को भरतखंड का सम्राट देखने की है । १ 'स्कंदगुप्त' नाटक में स्कंदगुप्त राज्य के प्रति उदासीन है , लेकिन चक्रपालित और पर्णदत्त बार-बार उसे सबके अधिकारों की रक्षा के लिए , अपना अधिकार सुरक्षित रखने के लिये उत्तेजित करते हैं ।२ अपने राज्य की सुरक्षा हेतु तत्युगीन भारतीय रणनीति हेतु धर्मयुद्ध तथा अधर्मयुद्ध दोनों का प्रचलन था । प्रसाद के नाटकों में धर्मयुद्ध का आधिक्य दिखाई देता है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन करने से ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय युद्ध के दौरान भी किसान सैनिकों के , सिबिरों के पास निर्भय होकर रह सकें ऐसी व्यवस्था थी । ३ यूनानी इतिहासकारों को युद्ध के पास में ही कृषकों हल चलाते देखकर एक ओर आश्चर्य हुआ तो दूसरी ओर उन्होंने इसकी प्रशंसा भी की । ४ प्रसाद के नाटकों में इसी प्रकार के धर्मयुद्ध की ओर संकेत करते हुए डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी जी लिखते हैं --''प्रसाद के नाटकों से इस प्रकार के धर्मयुद्धों के संकेत मिलते हैं --'वे हमीं लोगों के युद्ध हैं जिनमें रणभूमि के पास ही कृषक स्वच्छंदता से हल चलाता है ।'५ हम लोग युद्ध करना जानते हैं -द्वेष नहीं । ६ कौटिल्य ने तीन प्रकार के विजयी राजा बतलाये हैं - 'धर्मविजयी','लोभविजयी' और 'असुरविजयी' । धर्मविजयी विजित के आत्मसमर्पण से ही संतुष्ट हो जाती है ।७ प्रसाद के अनुसार धर्मविजयी के उदाहरण हैं- चन्द्रगुप्त मौर्य और स्कंदगुप्त, विक्रमादित्य । चन्द्रगुप्त सिकन्दर के घायल होने पर सिकन्दर की हत्या नहीं करता और उसे जाने नहीं देता । ८ स्कंदगुप्त खिंखिल को परास्त करने पर भी उसे भारत की सीमा के उस पार जाने का आदेश देकर छोड़ देता है ।९ लोभविजयी के उदाहरण हैं - हूण जिन्हें जयमाला 'अर्थलोलुप श्रृगाल' कहती है । 'राजश्री का देवगुप्त' असुर विजयी का उदाहरण है जो एक तो ग्रहवर्मा के प्राण लेने का षडयंत्र करता है दूसरे कान्यकुब्ज के सिंहासन का अपहरण करता है और तीसरे राजश्री को कामनाओं

का साधन बनाता है । धर्मयुद्ध में विजित राजा की समस्त संपत्ति का अधिकारी होते हुए भी उसकी रानियों पर विजेता का कोई अधिकार नहीं होता था । युद्धबंदियों को वह पुत्रवत समझता था ।१० ध्रुवस्वामिनी नाटक में शकराज को पराजित करने के उपरांत चंद्रगुप्त अपने को शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी अवश्य समझता है ।११ किन्तु वह कोमा इत्यादि के साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं करता । युद्ध में बंदी निरीह शकों का संहार १२ कर रामगुप्त ने धर्मयुद्ध के नियम की अवहेलना की थी जिसके परिणामस्वरूप उसे अपने ही सामंतों का कोपभाजन बनना पड़ा था । ''१३

''नीलदेवी'' नाटक में नाटककार भारतेन्दु ने यह दिखाना चाहा है कि तत्कालीन समाज में युद्ध के दोनों प्रकारों में से अधर्मयुद्ध का प्रचार-प्रसार ज्यादा था । नाटक के तीसरे दृश्य के प्रारंभ में जब सूर्य देव, नीलदेवी और अन्य राजपूत बैठे हुए होते हैं उसी समय उनमें एक राजपूत कहता है कि-''महाराज ! सब सावधान हैं । धर्मयुद्ध में तो हमको जीतने वाला कोई पृथ्वी पर नहीं है । ''१४ इस पर रानी १५ नील देवी राजा सूर्यदेव से अधर्मयुद्ध में तत्पर मुसलमानों के प्रति सावधान रहने के लिए कहती है । नाटक के पात्र वसंत १६ और पंडित के संवाद के माध्यम से भारतेन्दु जी यह बताना चाहते हैं कि नीलदेवी का नायक एक धार्मिक राजा था लेकिन उसे अधर्म युद्ध में मारा गया ।

भारतेन्दु जी नीलदेवी नाटक में धर्मनीति तथा राजनीति दोनों का समन्वय करना चाहते हैं । भारतेन्दु जी केवल धर्मनीति के द्वारा ही देश और जाति का संहार उचित नहीं समझते, कारण कि सूर्यदेव अधर्मयुद्ध करने वाले से धर्मयुद्ध की कल्पना करना चाहते थे । जिसका परिणाम कितना विषैला निकला यह स्वयं भारतेन्दु जी एक पात्र के माध्यम से कहलाना चाहते हैं --

''आर्यवंश को वधन पुन्य जो अधर्मधर्म में ।

गोभक्षन द्विज श्रुतिहिंसन नितचासु कर्म में ।।
तिनको तुरतहिं हतहु मिले रन कै घर माही ।
इन दुष्टन सों पाप किये हूँ पुन्य सदाही ।। ''१७

महाराज सूर्यदेव की मृत्यु के पश्चात् कुमार सूर्यदेव चार राजपूतों के साथ आते हैं और यवनों को परास्त करने की भूमिका बनाते हैं। नीलदेवी सबको शान्त होने के लिए कहती है। लेकिन सोनदेव माँ की आज्ञा का पालन करता है ---

''सोमदेव - (हाथ जोड़कर) माँ, जो आज्ञा होगी वही करूँगा।
नीलदेवी - अच्छा सुनों (पास बुलाकर कान में सब विचार करती है) एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती है।''१८

रानी नीलदेवी गायिका के वेष में यवन साम्राज्य अमीर के पास जाती है और नृत्य करके उसे रिझा लेती है। अमीर गायिका को अपने पास बैठने के लिए कहता है और नीलदेवी अपनी कूटनीतिक चाल में सफल भी होती है। मौका मिलते ही वह अमीर को मार देती है -

''अमीर - लो जान साहब !
(पियाला उठाकर अमीर जिस समय गायिका के पास ले जाता है उसी समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों ओर समाजी बाजा फेंककर शस्त्र निकाल कर मुसाहिब आदि को मारते हैं)।''१९

५- सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था :---

राज्य शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था की नितांत आवश्यकता पड़ती है बिना इसके अराजकता आदि फैलने का भय बना रहता है। शुक्रनीति और कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में मौलि सेना, भृत्य सेना इत्यादि के रूप में सैनिकों के कुछ भेदों का वर्णन अवश्य किया गया है

लेकिन आलोच्य नाटकों में इसका पूर्णरूपेण, प्रत्यक्षतः उल्लेख दृष्टिगत नहीं होता। खासकर प्रसाद के नाटकों में यदि देखा जाय तो इन सबकी चर्चा देखने को नहीं मिलती। किन्तु उन्होंने शान्ति रक्षा और शरीर रक्षा की बात अवश्य की है। प्रसाद के शान्तिरक्षक सैनिक को हम आधुनिक पुलिस (Police Force) के रूप में मान सकते हैं। शरीर रक्षक सैनिक को अर्थशास्त्र में अंगरक्षक (Bodyguard) के रूप में माना गया है जो सम्राट अथवा किसी प्रमुख अधिकारी की रक्षा के लिए नियुक्त होते हैं।

नीलदेवी नाटक के आठवें दृश्य में नीलदेवी की कूटनीतिक चालें शुरू होती हैं। उसके दो गुप्तचर पागल और दूसरा मुसलमान वेश में भेद लेकर परस्पर मिलते हैं जिससे पता चलता है कि राजा सूर्यदेव ने सत्ताइस लोगों को मार कर अपने प्राण त्याग दिये हैं। मियाँ और पागल एकान्त में खड़े होकर बात करते हैं, पागल बताता है कि कल दुष्ट यवनों ने राजा से धर्मपरिवर्तन की बात की तो पिंजड़े में बंद राजा ने उसके मुँह पर थूकते हुए कहा--"तुझ पर थू और तेरे मत पर थू।" १ मियाँ के पूछने पर पागल बतलाता है--

"पागल - इस पर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बंधन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े के बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताइस यवनों को मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग दिये।"२

मियाँ चारों ओर देखकर पूँछता है कि आगे क्या हुआ यह सब तुमने कैसे जाना।

"मियाँ - (चारों ओर देखकर) और अब क्या होता है? महाराज का शरीर कहाँ है? तुमने यह सब कैसे जाना? ३

पागल - सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेष में घूमते हैं। महाराज शरीर का अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। (चारों ओर देखकर) कल ही अवसर है।''४ कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में दूत या गुप्तचर को राजा का मुख बताया है। राजकीय संदेह-वहन, संधि का पालन, प्रताप का प्रकाशन, राजा के लिए मित्रों को एकत्रित करना तथा शत्रु के मित्रों में प्रकाश डालना इत्यादि मुख्य कार्यों की भी चर्चा हमें अर्थशास्त्र में दृष्टिगोचर होती है। ५ सामान्यतः चर या गुप्तचर उन्हें कहा जाता है जो शत्रुपक्ष के रहस्यों को उद्घाटित करता है तथा गुप्त सूचनाएँ देने का कार्य करता है। शुक्रनीति गुप्तचरों के लिए 'गूढ़चार' शब्द का प्रयोग किया गया है जिनका काम वेश परिवर्तन करके राजकर्मचारियों एवं प्रजा का भेद मालुम करना था। ६ कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में गुप्तचर के दो भेद बतलाए हैं - १- संस्था और २- संचार। जो एक ही स्थान पर रहकर सन्यासी या कापटिक भेष में गुप्त रहस्यों की खोज करते हैं उनके लिए संस्था शब्द का प्रयोग कौटिल्य ने किया है और जो स्त्री आदि के भेषों को बदलकर गुप्त रहस्यों की खोज करते थे उनके लिए संचार ७ शब्द का प्रयोग किया गया।

प्रसाद ने भी अपने नाटकों में संचार वर्ग के गुप्तचरों का प्रयोग अधिकतर किया है। चंद्रगुप्त नाटक में चाणक्यादि पर्वतेश्वर के स्कंधावार में नट, नटी, संपेरा, और ब्रह्मचारी बनकर जाते हैं।८ चंद्रगुप्त नाटक का नायक चंद्रगुप्त इंद्रजाली के वेश में यवन सेना में प्रवेश करता है।९चाणक्य का चर क्षपणक वेश में गीत गाते हुए भीख मांगता है तथा उस गीत के माध्यम से ही बंदी सिंहरण को संदेश भी दे देता है।१०

प्रसाद के चंद्रगुप्त नाटक में स्त्री गुप्तचरों का भी कहीं - कहीं उल्लेख पाया जाता है। नर्तकी बनी हुई मालविका राक्षस का जाली

पत्र एवं उसकी मुद्राओं को लेकर नंद के समीप जाती है ।११ गुप्तचर बनी हुई सुवासिनी सिल्यूकस की बंदिनी बनकर कार्नेलिया के पास रहने लगती है ।१२

अर्थशास्त्र में दूत और चर को अलग-अलग माना गया है तथा दोनों के लिए भिन्न-भिन्न कार्य बतलाए गए हैं । लेकिन प्रसाद ने अपने नाटकों में कई स्थानों पर इस अन्तर को भुलाकर एक ही व्यक्ति को दोनों पदों (दूत या चर) से संबोधित कर दिया है । 'स्कंदगुप्त नाटक' में प्रसाद ने स्कंद के पास आये हुए मालवेश के दूत के लिए 'चर' शब्द का प्रयोग किया है ।१३ स्कंधावार से भेजे गये सेनापति सिंगल के दूत के लिए 'चर' तथा 'दूत' दोनों संज्ञाएं एक साथ प्राप्त होती हैं । १४ राज्यश्री नाटक में 'देवगुप्त' के लिए उसके मंत्री का युद्ध से संबंधित पत्र दूत लाता है ।१५ प्रभाकर वर्धन के मृत्यु की रचना भी देवगुप्त दूत के द्वारा ही मिलती है ।१६ 'राज्यश्री नाटक' में राज्यवर्धन को कान्यकुब्ज दुर्ग के भीतर की सैन्य संबंधी गुप्त रचना भी उन्हें दूत ही देता है । १७ तत्कालीन समाज में संभवतः व्यवहार में 'दूत' शब्द संदेशवाहक के लिए प्रयुक्त होता था । इसीलिए प्रसाद ने भी कई स्थलों पर शब्दों के पारिभाषिक अर्थ का प्रयोग न करके साधारण व्यवहार में आने वाले शब्द का ही प्रयोग किया है ।

६- दण्ड- विधानः---

"शिवा-साधना" नाटक में शिवा जी ने देश द्रोहियों को यथोचित दण्ड तो दिया ही है लेकिन मौका पड़ने पर वे प्राणदण्ड देने से भी नहीं चूकते तभी तो उन्होंने देशद्रोहियों को प्राणदण्ड १ भी दिये हैं तथा उनकी भर्त्सना भी की है ।

आलोच्य नाटकों से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में भी दण्ड व्यवस्था थी । राजा किसी को भी दण्डाधिकारी

बना सकता था। प्रस्तुत नाटक में आचार्य कालक अपनी बहन के प्रति किए गये अत्याचार से अत्यंत दुःखी है उनके स्वयं के कथन से एक पीड़ित महात्मा की अन्तर्दशा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है जब वे कहते हैं कि-''मुझे राजा को दंड देना होगा। पर मैं निरीह बीतराग दण्ड भी क्या दे सकता हूँ ? जो हो गया उसे जाने दूँ ? अपने तप में विघ्न न पड़ने दूँ ? (कुछ देर चुप रहकर) नहीं मैं दण्ड दूँगा, राजा को दण्ड दूँगा, सारे प्रान्त को दण्ड दूँगा। भगिनी का अपमान, मेरा अपमान है। भगवान महावीर का, सम्पूर्ण जैन धर्म का अपमान है। इस अत्याचार का बदला लेना ही होगा। मुझे चाणक्य बनना होगा। (फिर कुछ देर चुप रहकर) नहीं, यह मेरा मार्ग नहीं है। यह तामसी प्रवृत्ति है जिसका मुझे तिरस्कार करना चाहिए। मैं राजा का तिरस्कार भी क्या कर सकता हूँ, उसका बिगाड़ भी क्या सकता हूँ। क्यों, क्यों मैं क्षत्रिय नहीं हूँ ? मेरे संस्कार मुझे उत्तेजित कर रहे हैं। मैं दंड दूँगा। मैं अन्य राजाओं की सहायता लेकर अवन्ती नरेश को भस्म कर दूँगा।''२

प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करने से हमें यह पता चलता है कि तत्युगीन समाज में राजविद्रोह करने वाले को मृत्युदंड की सजा तक दी जाती थी। प्रसाद ने अपने नाटकों में इस दंडविधान को शास्त्र संमत स्वीकार किया है।३ जातक ग्रंथों में भी राजद्रोही को शूली पर चढ़ा देने के कई प्रमाण प्राप्त होते हैं। चंद्रगुप्त नाटक में चंद्रगुप्त के अनुसार - नंद की व्यवस्था में आजन्म कारावास, अंधकूप तथा देशनिष्कासन इत्यादि दंड राजद्रोहियों को दिये जाते थे। यहाँ तक कि नंद राजद्रोही को हाथी से कुचलवाने की धमकी देता है। अर्थशास्त्र में राज्य की कामना शत्रुओं को उकसाना, अन्तःपुर में अव्यवस्था फैलाना तथा सेना को राजा से कुपित कराना आदि के लिए मृत्युदंड की सजा दी जाने का प्रमाण प्राप्त होता है। लेकिन ब्राह्मण को मृत्युदंड की जगह अंधकूप में डालने का विधान था।४

तुलनात्मक अनुशीलन :---

राजनीति शब्द अंग्रेजी के पोलिटिक्स (Politics) का हिन्दी रूपान्तरण है । प्रस्तुत अध्याय के पूर्व ही हमने राजनीति का अर्थ, परिभाषा तथा स्वरूप आदि पर चर्चा की है । इस अध्याय में मैने संस्कृत तथा हिन्दी के उन ऐतिहासिक नाटकों को लिया है जिनमें राजनीति के संदर्भ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं । जिसके तहत राजा एवं उसके कर्त्तव्य, मंत्रि-परिषद एवं उसके कार्य, न्याय-व्यवस्था, दण्डनीति, रणनीति एवं कूटनीति इत्यादि संदर्भों के संकेत दोनों भाषाओं के नाटककारों ने दिये है ।

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की राजनैतिक स्थिति के तहत राजनीति के उन पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है जिन्हें मैने अपने शोध-प्रबंध का मुख्य विषय बनाया है । संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों पर पूर्ण विचार करने से पता चलता है कि तत्युगीन समाज में राजा की अहम् भूमिका होती थी । राजा को सम्राट, राजन, महाराज, मगध नरेश, अवध नरेश, परमेश्वर आदि नामों से अभिहित किया जाता था । राजा पर ही प्रजा पूर्णरूप से आश्रित होती थी और राजा प्रजा का ध्यान भी रखता था । तत्कालीन युग में ही कुछ मंत्रीगण तथा प्रजा के कुछ लोग ऐसे भी होते थे कि जो अवसर मिलते ही राजा को अपदश्त करने की फिराक में रहते थे, जिसके उदाहरण भी हमने नाटकों से लेकर प्रस्तुत किए हैं । आज भी ऐसा देखा जाता है कि ठीक उसी तरह विपक्षीय दल व असंतुष्ट जनता हमेशा सरकार गिराने का प्रयत्न करती रहती है , तत्युगीन नाट्य-समाज में प्रजा एकत्र होकर राजा के विरूद्ध षडयंत्र करके उसे सत्ता से बहिष्कृत करती

थी। नाटकों में राजा की स्थिति कभी अत्यंत सुदृढ़ देखी जाती है तो कभी अत्यंत दयनीय। कुलमिलाकर समाज परिवर्तनशील है जिसका राजनीति पर भी थोड़ा-बहुत अन्तर आना स्वाभाविक है।

संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में परिषद के लिए मंत्रिपरिषद, राज्य परिषद इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। राजा की अनुपस्थिति में यह परिषद समस्त कार्यों की देख-रेख कर लेती थी। कोई भी अंतिम निर्णय बिना परिषद के विचार-विमर्श के नहीं लिया जा सकता था। राजा की अल्पायु में मृत्यु हो जाने पर राजा का राज्याभिषेक करना, राज्य का कार्यभार सम्हालना, प्रजा की हर संभव रक्षा करना, राष्ट्रीय संकट के समय किन्हीं कारणों से राजा के न होने पर प्रजा को सुरक्षित रखना इत्यादि परिषद के महत्वपूर्ण कार्य माने गये हैं।

न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में ऐसा संकेत प्राप्त होता है कि न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करना, प्रजा का पहला कर्त्तव्य होता है जिसका पूर्णरूपेण अनुकरण संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने अपने नाटकों में किया है। इस तथ्य की पूर्ति स्कंदगुप्त नाटक में देवकी के कथन से होता है जब वह अपने पुत्र स्कंदगुप्त के राज्याभिषेक के समय कहती है - ''तुम्हारी माता की यह मंगल कामना है कि तुम्हारा शासन दण्ड, क्षमा के संकेत पर चला करे।''

धर्मशास्त्र एवं प्राचीन ग्रंथों में ऐसा बताया गया है कि यदि राजा प्रजा के प्रति दुष्टता करे तो उसको भी दण्डित करने का अधिकार होना चाहिए। जिसका पूर्ण पालन नाटककारों ने अपने नाटकों में किया है। न्याय-व्यवस्था के अन्तर्गत मृच्छकटिकं नाटक में ऐसा संकेत मिलता है कि न्यायाधिकारी न्याय करने

हेतु पूर्ण स्वतंत्र नहीं था। अन्तिम निर्णय राजा के ही हाथ में होता था। इसी नाटक में न्यायाधिकारी के परामर्श का अतिक्रमण करके राजा ने चारूदत्त को मृत्युदण्ड की सजा दी है। राजा के न्याय, अन्याय पर ही प्रजा पूर्ण रूप से टिकी हुई थी। मनु की न्याय परम्परा का पूर्णरूप से निर्वाह करते चन्द्रगुप्त नाटक का नायक स्वयं अपने पिता के अपराध को क्षम्य नहीं करता। इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक की न्याय-व्यवस्था पूर्णरूप से मनु आदि रचित स्मृति-ग्रन्थों पर आधारित दिखायी देती है।

संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों ने अपने नाटकों में युद्ध नीति, कूटनीति एवं रणनीति का पूर्णरूपेण वर्णन किया है। युद्धनीति या संधि के द्वारा अथवा किसी राजा पर आक्रमण के माध्यम से उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लेना ही ऐतिहासिक नाटककारों की सबसे बड़ी नीति मानी जाती थी। साम, दाम, दण्ड तथा भेद जैसी नीति को अपनाना सामान्य बात समझी जाती थी। स्वप्नवासवदत्तम नाटक में भास भारत के विशाल भव्यरूप की झाँकी देखने के साथ-साथ सागर पर्यन्त हिमालय तथा विन्ध से सुशोभित भारतभूमि के एक छत्र राज्य की कल्पना करते हुए लिखते हैं ---

"इमां सागर पर्यन्तां हिमवद्विन्ध्य कुण्डलाम्।
महीमेकात पत्रांकां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥"

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककार प्रसाद के अजातशत्रु नाटक के अजातशत्रु को भारतखंड का सम्राट देखने को है। संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में जहाँ महाभारत एवं रामायण कालीन धर्मनीति का प्रभाव दिखायी देता है वहीं हिन्दी गद्य के पुराधा माने जाने वाले भारतेन्दु धर्मनीति तथा राजानीति दोनों का समन्वय करना चाहते हैं लेकिन परिणाम बहुत विषैला निकला--

"आर्यवंश. को वधन पुन्य जो अधर्मधर्म में ।
गोभक्षन द्विज श्रुतिहिंसन नितचासु कर्म में ।।
तिनको तुरतहिं हतहु मिले रन कै घर माही ।
इन दुष्टन सों पाप किये हूँ पुन्य सदाही ।।"

साथ ही साथ कूटनीति एवं रणनीति या युद्धनीति का पूर्ण पफभाव संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में देखा जाता है । मंत्रियों की नीति या रणनीति सर्वोपरि मानी जाती थी । मृच्छकटिकम् नाटक में कूटनीति एवं रणनीति का पूर्ण प्रचलन देखा जाता है । राज्य में अपराधियों का पता लगाने के लिए विशेष प्रकार के अधिकारी नियुक्त किये जाते थे । राजा से अपमानित होने पर प्रजा कूटनीतिक चाल से राजा का विद्रोह करती देखी जाती है । भारतेन्दु रचित "नीलदेवी" नाटक में नीलदेवी अपनी कूटनीतिक चाल के माध्यम से मौका मिलते ही अमीर को मार देती है ।

सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था के अन्तर्गत ऐतिहासिक नाटकों में सेना के लिए सैन्यबल इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता था । राज्य की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था का प्रचलन संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में देखा जाता है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गुप्तचर के दो भेद बताये गये हैं -- संस्था तथा संचार । जिनका प्रयोग संस्कृत नाटककार भासादि ने एवं हिन्दी नाटककार प्रसादादि ने अपने-अपने ऐतिहासिक नाटकों में सुचारू रूप से किया है । कुल मिलाकर संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में नाटककारों ने सैनिक व्यवस्था का कार्य राज्य को व्यवस्थित रूप से चलाने व राज्य को सुरक्षा प्रदान करना माना है । जो कार्य आज पुलिस करती है वही कार्य तत्युगीन समाज में सैनिक का था । इसी प्रकार गुप्तचरों का कार्य वेष परिवर्तन करके शत्रु पक्ष के रहस्यों को

उद्घाटित करना एवं गुप्त सूचनाएँ प्राप्त करना मुख्य कार्य था। जिसका पूर्ण प्रचलन हमें दोनों भाषाओं के नाटकों में देखने को मिलता है।

दण्डविधान के अन्तर्गत संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इस व्यवस्था पूर्ण प्रचलन देखा जाता है। दण्ड व्यवस्था सामान्य से लेकर मृत्युपर्यन्त थी। मृच्छकटिकम् नाटक में देशद्रोहियों को मृत्युदण्ड देते हुए देखा जाता है तो हिन्दी नाटक शिवासाधना में शिवा जी ने देशद्रोहियों को यथोचित दंड तो दिया था लेकिन मौका मिलने पर उन्हें प्राणदंड भी दे देते हैं। प्रसाद के नाटकों में राजद्रोह करने वाले को मृत्युदंड देने का संकेत प्राप्त होता है। मृच्छकटिकं नाटक में देशद्रोह हेतु मृत्युदंड प्राप्त व्यक्ति को पानी में डुबों देने का, अंधकूप में डाल देने का या आरा चलाने का प्रचलन जहाँ देखा जाता है वहीं प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त में देशद्रोहियों के लिए आजन्म कारावास, अंधकूप, हाथी से कुचलवा देना एवं देशनिष्काशन जैसे दंडों का प्रचलन देखा जाता है।

सन्दर्भ

राजनीति एवं उसका स्वरूप :---

१- इसी प्रकार "राजनीति" का संबंध राज से कहा गया है ।
द्रष्टव्य -प्रिंसिपल ऑफ सोसियल एण्ड पोलिटिकल थ्यौरी - पृ. ५

२- हिन्दी विश्वकोश - नगेन्द्र बसु - पृ. ३२

३- राजनीतिसार - ए . अप्पोदय राय - पृ. १

४- याज्ञवल्क्य स्मृति -७ -३४५ - ३४६ ,
स्मृति शास्त्र : संस्कृति समाज और राजनीति - डॉ. सोमनाथ शुक्ल - पृ. २५२

५- याज्ञवल्क्य स्मृति -७ -३४५ - ३४६ ,
स्मृति शास्त्र : संस्कृति समाज और राजनीति - डॉ. सोमनाथ शुक्ल - पृ. २५३

६- मनुस्मृति - ६/११० - ११२
स्मृति शास्त्र : संस्कृति समाज और राजनीति - डॉ. सोमनाथ शुक्ल - पृ. २५३

७- जॉन आर. सिली-इन्ट्रोडक्शन टू पोलिटिकल साइंस -पृ.३२
राजनीति विज्ञान - नवीन नारायण अग्रवाल

८- राजनीतिसार - ए . अप्पोदय राय - पृ. १

९- राजनीतिसार - ए . अप्पोदय राय - पृ. २

१०- राजनीतिसार - ए . अप्पोदय राय - पृ. १

११- मनुस्मृति - ७/३

१२- मनुस्मृति - ७/५

१३- यथा प्रहलादनाच्चन्द्रः प्रतापान्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरंजनात् ॥
रघुवंश-कालिदास - ४-१२

१४- गौतम धर्मसूत्र - १०-७-८, ११-९-१०

१५- वशिष्ठ धर्मसूत्र - १९-१-२

१६- मनुस्मृति - ७/८

१७- शुक्र नीति - १२२-१२४

१८- भारतीय संस्कृति - पृ. २००

१९- ऋग्वेद - १० / १७८ , अथवर्वेद - ६/ ८७/ ८८

२०- ऋग्वेद - १० / ७१ /७० ,अथवर्वेद - ७/ १२,
यजुर्वेद-१६ /२८

२१- अथवर्वेद - ६/ ८८/ ३, ५/१९/९५

२२- अथवर्वेद - ३/ ५/ ६-७,

२३- अथवर्वेद - ३/ ४/ २,

२४- अथवर्वेद - ४/ ८/ ४, ३/३/५, ३/४/६

२५- महाभारत - ६१/ ६५

२६- अमरकोश

२७- शुक्र नीति - खण्ड- ख, १२१-१२२,१२२-१२४

२८- स्वाम्यमात्यपुरं राष्ट्रं कोष दण्ड तथा सुहृत ।
एतैतानि समस्तानि लोकेस्मिन राज्य उच्यते ॥
मनुस्मृति- ९-२९४

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण :---

राजा एवं उसके कर्त्तव्य :--

१- मृच्छकटिकम् -शूद्रक ६/३२८

२ - हरति कर समूहं खे शशांकस्य मेघो ।
नृपोइव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रो : ॥
मृच्छकटिकम् -शूद्रक, ५/१६

३ - मृच्छकटिकम् -शूद्रक १०/५५८-५५९

४ - संस्कृत-साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय, पृ.५३०

५ - मृच्छकटिकम्-शूद्रक, ७/१

६- मृच्छकटिकम् -शूद्रक, ४/२६

७- वही अंक १० पृ.६१०

८- मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास- अंक- १, पृ.२३

९- तद्यातव्ययक्षे स्थितस्य पूर्वसंकल्पितसमुन्मूल
वीरसेन- मुखं दण्डचक्रमा ज्ञापया ।।
मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास- १/२४

१०- अचिराधिष्ठतराज्यः शत्रुःप्रकृतिष्व रूढ़मूलत्वात ।
विसरोपन शिथिलस्तरूरिवः सुकरः समुद्धर्तुम ।
मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास-१/८

११- प्रतिज्ञायौगन्धरायण, भास, १/१५

१२- प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थ
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
स्द्धिेडपि मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं में ।।
स्वप्नवासवदत्तम-भास, ६/१५

१३- भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानंवञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धतुं राजधर्मस्य देशिकः ।। वही ६/१६

१४-प्रतिज्ञायौगन्धरायण, भास, २/३

१५-प्रतिज्ञायौगन्धरायण, भास, २/४

१६-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ३,८३,११०

१७-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१

१८-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,२,३१

१९-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,२,७९

२०-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ३,१२२/४,१९०

२१-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ४,१७६

२२-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ४,१८३

२३-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, १,२४/२,७१

२४-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, १,३२

२५-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,१,५९/३,१३२

२६-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, २,९४

२७-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ३,१३९/४,१९२

२८-मुद्राराक्षस २,७९

२९-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ३,३२३

३०-मुद्राराक्षस-विशाखदत्त, ३,३२१

३१-''सुविश्रब्धैरंगेः पथिषु विषमोपलता ।.....

मनस्वी दम्यत्वत स्खलति न च दुःखं वहति च ।।''

मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१

३२-''परार्थानुष्ठाने रहवति नृपं स्वार्थपरता ।''

मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१ ३,११२

३३- राज्य कि नाम राजवर्मानुवृत्ति परतंत्रस्य --

भूपतेर्महदप्रीतिस्थानम् ।।

मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१ ३,१२२

३४- मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१ १, ६०-६१

३५- मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१ , ४,१७६

३६- आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्ताम् ।

चूड़ारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ।।

मुद्राराक्षस-विशाखदत्त,३,१२१ ३,१४०

३७-''निर्णये वयं प्रमाणम् शेषे तु राजातथापि ।''

मृच्छकटिकम् -शूद्रक,३,१२१ २०,५६४

(२) मंत्रि परिषद तथा उसके कार्य : ---

१- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त, ३,१५१

२- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त,२,७४

३- मुद्राराक्षस -विशाखदत्त,२,११५

४-स्वप्नवासवदत्तम् -भास ,५,११-१३

५-स्वप्नवासवदत्तम् -भास ,१/१५

६- प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपते हितार्थ ,
कामं मया कृतामिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवाऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कित मे ।।
स्वप्नवासवदत्तम् -भास ,६/१५

७-प्रतिज्ञायौगंधरायण -भास, १/ १३-१४

८- प्रतिज्ञायौगंधरायण -भास, अंक ६, पृ.१३६

९- कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति । स्वप्नवासवदत्तम् अंक ६ पृ.
१३७

१०-प्रतिज्ञायौगंधरायण -भास,४/५

११- .... वही .....

१२-मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास, ४/४१५

१३-मालविकाग्निमित्रम्-कालिदास,५/१३-१४

(३)-न्याय व्यवस्था :---

१- मृच्छकटिकम् - शूद्रक - अंक- ९ , पृ. ५११

२- मृच्छकटिकम् - शूद्रक - अंक- १० , पृ. ६१६

३- मृच्छकटिकम् - शूद्रक - अंक- ९ , पृ. ५६४

४- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५/२१-२२

५- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/१७-१८

६- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/१५-१७

(४)-युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीति :---

१- स्वप्नवासवदत्तम् -भास ,५/१२

२- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास - ४/१२-१४

३- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास - ४/१२-१४

४- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास - ४/२२

५- शुक्रनीति , ४,७०

६- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २.११

७- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ६,२१६

८- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ७,२९१

९- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २,९९

१०- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २,८०

११- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५,११०

१२- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ६,१२

१३- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ६,२७३

१४- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २,२७२-२७३

१५- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - अंक ,५

मुद्राराक्षसं का सांस्कृतिक अनुशीलन-हीरालाल शुक्ल , पृ.२९

१६- सद्यः परात्मपरिमाणविवेकमूढ़ः ।

कः शालमेन विधिनालभतांविनाशम् ।।

मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १,२०

१७- अर्थशास्त्र - ३/१६- सामदामाभ्यां दुर्बलानुपनमेत् ।।

१८- राजा तेन क्षवितथं तंत्रकारवचनम् ।

मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/९-१०

१९- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/७-८

२०- मृच्छकटिकम् - शूद्रक, पृ. २६९

२१- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास - ४/१०-११

२२- प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् - भास - ४/४

२३- ''नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य या भून्नरकं स गच्छेद यो भर्तृपिण्डस्य कृतेन युध्येत ।''
वही - ४/२

२४- मृच्छकटिकम् - शूद्रक, पृ. २६९

(५)-सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था :---

१- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - पृ. ३, १४९,१५१

२- हत्वागजान् सगजिनः सहयांश्चयोद्धा ---
निर्वित्तपदोअभियातः ।
प्रतिज्ञा यौगन्धरायण - भास - ४/४

३- प्रतिज्ञा यौगन्धरायण - भास - अंक-४ पृ. ११६

४- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५,२२९

५- अर्थशास्त्र - कौटिल्य - २,८

६- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ९, ९२

७- तुरगबल- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २, ९२

८- हस्तिबलम् - मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५, २२६

९- सकलस्यैव राजस्यमूलं हस्त्यस्वं
मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ३, १५२

१०- सोऽयंव्यामकालः - मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ३, १५३

११- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ६, २६६

१२- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ७, २९१

१३- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ७, ३१२

१४- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ६, २८४

१५- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २, ९८

१६- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५, २१२
१७- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - ५/१
१८- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/८-९
१९- मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास - १/७-८
२०- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १२, १
२१- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५, ३१
२२- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - ५, २०८
२३- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १, ३१
२४- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १, ३१ /२, ८०
२५- मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - १, ३०
२६- प्रभूतत्त्वाच्च प्रणिधीनाम्
मुद्राराक्षस - विशाखदत्त - २, ८७

(६)-दण्ड-विधान :---

१- निर्णये वयं प्रमाणम् शेषे तु राजा तथापि ।
मृच्छकटिकम् अंक पृ.५६४
२- वही ,अंक १०
३- आर्य चारूदत्त । सत्यमभिधीयताम् ।
इदानीं सुकुमरिडस्मिन निःशडंक कर्कशाः कशा : ।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथै : । वही ९/३६
४- मृ.अंक १०पृ.५५८-५५९
५- वधौडर्थग्रहणंचैव परिक्लेषस्थतथैव च ।
इति दण्डविधानसैर्दण्डोडपि त्रिविधः स्मृतः। कामन्दक १७,९
६- राजाडपथ्यकटिषु तीक्ष्णदण्डौ राजा। मुद्रा १,६०
७- वही १,५०
८- मुद्रा ७,२९१ शूलं स्कन्धेनादाम
९- वही ७,२९६

१०- वही ७,२९६

११- वही ५,२४६

१२- वही १,५५

१३- वही १,६० सनिकाटं नगरान्निर्वास्यते ।

१४- उग्रेण दण्डेन पीडयन्त्रः मुद्रा १,१५३
अतिताड्यमानेन मया न पाटितं रहस्यं धारायितुं। वही ५,२३३

१५- ताड्यमानः किं न ब्रूयात। वही ५,२५

१६- धातकाःयं कमति गृहितशस्त्रं अपूर्वम् पुरूषमग्रतः पश्चाद्धा प्रेक्षन्ते तदार्धपथे स्वात्मानो जीवितं परिरक्षन्तः अप्राप्त वध्यस्थानं वध्य व्यायदयन्ति ।

-वही ६,२८६

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक चित्रण :--

राजा एवं उसके कर्त्तव्य :---

१- भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-१ , नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ. ५३६

२- भारतेन्दु ग्रन्थावली - भाग-१ , नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ. ५३५

३- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/१५७

४- भाष्य - पृ. २०२

५- शुक्रनीति - १८२-८६,

६- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, १/५३

७- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , १/७५

८- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, १/२७

९- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, १/१७

१०- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, १/१२

११- ''ऐतेनैद्रेंण महाभिषेकेण क्षत्रिय शापयित्वा अभिषिंचेत स ब्रूयात सह श्रद्धया यांच रात्रीम् जायेहं यांच प्रेतास्मि तदुभयन्तेरेणेष्टापूर्त्तः ये लोकं सुकृतमायुः प्रजा वृंजीथा यदि ते दुहयेमिति ।''

- ऐतरेय ब्राह्मण - ८ / २५

१२- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/२१२

१३- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, २/७९

१४- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. १९

१५- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. १०६-१०७

१६- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. ९६

१७- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. १०७

१८- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. २९

१९- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. ५,३०

२०- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. १४,१८

२१- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. १६

मंत्रिपरिषद और उसके कार्य :---

१- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, २/६६

२- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, २/६६

३- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, १/३२

४- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, ३/१९२

५- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, ३/६०-६१

६- हिन्दू पौलिटी -कात्यायन , २ /११६

७- ते सार्धं चिंतये नित्यं सामान्य संधिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिम्लब्धप्रशमनानि च ।। मनुस्मृति- ७/५६

८- हिन्दू पौलिटी - कात्यायन - २ /११७

९- अर्थशास्त्र - कौटिल्य - १ /१५
१०- शुक्रनीति - २/२
११- हुआनच्वांग - ट्रेवल्स इन इंडिया - वाटर्स , १/३४३
१२- प्रसाद के नाटक - डॉ. जगदीश चंद्र जोशी - पृ. ४२८
१३- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, ३/५९
१४- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/१९१
१५- शक विजय - उदय शंकर भट्ट - पृ. १११
१६- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, पृ. ३१
१७- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, पृ. ६६
१८- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, पृ. ६६
१९- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , पृ. १७२
२०- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, पृ. ६०-६१
२१- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, पृ. २५

न्याय-व्यवस्था :---

१- ''राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गीय प्रजा धर्मेण रक्षितुः अरक्षितुर्वा क्षेत्तुर्वा मिथ्यादंडमतोऽन्यथा ।''
- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, ३/१/५३
२- ''दंडो हि केवलो लोकं पर चैवं च रक्षति''
- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, ३/१/५५
३- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, ३/१५९
४- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, २/८५
५- प्रसाद के नाटक - डॉ. जगदीश चंद्र जोशी
६- शुक्रनीति - ४/५२
७- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, १/६२
८- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/१३०

९- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, २/८३
१०- शुक्रनीति - ४/४८
११- मनुस्मृति -
१२- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ४/२४६
१३- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, अंक-१
१४- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, ४/११६
१५- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, ३/१/५६,५७
१६- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, ३/१२९
१७- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, ४/११/१७

युद्धनीति, कूटनीति एवं रणनीति :---

१- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, २/१०७
२- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ४/१९६
३- द सिवलाइजेशन इन एशियंट इंडिया - लुई रेनू - पृ. १२३
४- द सिवलाइजेशन इन एशियंट इंडिया - लुई रेनू - पृ. १२३
५- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , २/१४५
६- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/१६५
७- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, १२/१/११-१३
८- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , २/१५१
९- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, ५/१५२
१०- पोलिटिकल थोट इन दी पुराणाज - जगदीश शास्त्री - पृ. २५
११- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, ३/५९
१२- ध्रुवस्वामिनी - जयशंकर प्रसाद, ३/५६
१३- प्रसाद के नाटक - डॉ. जगदीश चंद्र जोशी - पृ. ४५०
१४- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ८३

१५- ''रानी- सुना है कि ये दुष्ट अधर्म से बहुत लड़ते हैं ।''
नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ८३

१६- ''मिया (पंडित जी) हाय -! अब भारत वर्ष की कौन गति होगी ? अब त्रैलोक्य- ललामसुता भारत कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथा सुखदलन करेंगे । अब स्वाधीनता का सूर्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करेगा । हाय ! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है । हाय ! धार्मिक वीर पुरूष की यह गति ।''
भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग-१ , पृ. ५३६

१७- भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग-१ , पृ. ५४०

१८- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. १०५

१९- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. १०६

सैनिक एवं गुप्तचर व्यवस्था :---

१- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ९६

२- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ९६

३- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ९७

४- नीलदेवी - सं. ललिता प्रसाद शुक्ल - पृ. ९७

५- 'दूतमुखा वै राजनस्त्व चान्ये च'
अर्थशास्त्र कौटिल्य-१/१६,४९-५०

६- शुक्रनीति - १/३६

७- अर्थशास्त्र कौटिल्य-१/११/८-९

८- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , २/१५७

९- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , २/१२८

१०- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , २/१३२

११- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ३/१७२

१२- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद , ४/२२२

१३- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, १/१२

१४- स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, ३/९२-९३

१५- राजश्री - जयशंकर प्रसाद , १/१६

१६- राजश्री - जयशंकर प्रसाद , १/२४

१७- राजश्री - जयशंकर प्रसाद , २/३६

दण्ड-विधान :---

१- शिवा साधना - हरिकृष्ण प्रेमी - पृ. ७९

२- शक विजय - उदयशंकर भट्ट -पृ. ४२-४३

३- अजातशत्रु- जयशंकर प्रसाद, ३/१२९

४- अर्थशास्त्र- कौटिल्य, ४/११/१७